विप्लव प्रकाशन संख्या—३१

# उत्तमी की मां

यशपाल

प्रकाशक

विप्लव कार्यालय, लखनऊ

१९५५ ] दो रुपया

# फिट आने की मजबूरी

'उत्तमी की मां' शीर्षक कहानियों का बारहवां संग्रह पाठकों को सौंपते समय याद आता है कि सोलह वर्ष पूर्व अपनी कहानियों का पहला संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' का प्रकाशन करते समय मन में एक संकोच और आशंका थी। अभिप्राय यह नहीं है कि अब मैं पारखियों अथवा आलोचकों से त्रस्त नहीं हूँ अथवा प्रशंसकों ने मेरा उत्साह बढ़ा दिया है। उस समय आशंका यह थी कि मेरी रचनाओं में प्रयोजन और उद्देश्य की छिप न सकने वाली गंध पाकर उन्हें कला की तुला पर कैसे तोला जायगा ?

आज सोलह वर्ष बाद साहित्य को सामाजिक समस्याओं के समाधान का साधन बनाने वाले या सामाजिक प्रयोजन से साहित्य का प्रयोग करने वाले साहित्यिक के गले में प्रगतिशीलता का तौक लटका कर उसकी खिल्ली उड़ा दिये जाने का भय नहीं रहा। साहित्य को स्वान्तः सुखाय कह कर अशोभन वास्तविकता से भरे कठोर सामाजिक धरातल को छोड़ भावना के ऊंचे सूक्ष्म जगत में उठ जाने का अभिमान आज कोई विचारवान साहित्यिक नहीं करता। आज साहित्य के प्रगतिशील कहलाने वाले पक्ष से, दूसरे कारणों से असंतुष्ट सौम्य, आदर्शवादी और भाववादी साहित्यिक भी साहित्य को सोद्देश्य और समाज के प्रति दायित्व के रूप में ही स्वीकार करते हैं। प्रयाग के अति सौम्य साहित्यिकों की गोष्ठी 'परिमल' ने हिन्दी जगत के गण्य-मान्य कलाकारों की उपस्थिति में यह मन्तव्य निश्चय किया है कि 'रचनात्मक दृष्टि और स्वतंत्र मानस से सम्पन्न कोई भी कलाकार यह नहीं मान सकता कि साहित्य रचना उद्देश्यहीन या निरर्थक सृष्टि है। ऐसे कलाकार के लिये वह एक गम्भीर दायित्व से समन्वित प्रक्रिया है। यह दायित्व, वस्तु और शिल्प दोनों स्तरों पर साहित्य को मर्यादित करता है।'

परिमल के मन्तव्य में साहित्य और कला के सामाजिक उद्देश्य और दायित्व को स्वीकार करके भी इस विषय में जागरूक रहने के लिये उद्बोधन किया गया है कि साहित्य और कला के मानवीय लक्ष्यों की पूर्ति के लिए कलाकार का संयम और स्वातंत्र्य ही मूल स्रोत और आधार हैं।.........आज के युग में जब

कि वैज्ञानिक आविष्कार की तीव्र गति के साथ मानव का आन्तरिक और आत्मिक उन्मेश नहीं हो पाया है, कलाकार की आत्मा का विवेक और स्वातंत्र्य आक्रान्त हो सकता है। ऐसी अवस्था में कलाकार की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दमन हो सकता है। परिमल का कहना है कि 'कलाकार का दायित्व उसके कर्म से ही उद्भूत होता है। वह किसी बाहरी संगठन या सत्ता द्वारा उस पर आरोपित नहीं किया जा सकता।.........व्यक्ति का विवेक व्यक्ति का दायित्व है, जिसे किसी दूसरे में न्यस्त नहीं किया जा सकता।'

कलाकार की दृष्टि में अपने विवेक, भावना और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल्य सब से अधिक है। कलाकार के लिये यह स्वतंत्रता उसके अस्तित्व के समान ही महत्वपूर्ण है। जब कलाकार यह स्वतंत्रता खो बैठता है, वह जीवित रहते हुए भी, शायद भौतिक सुविधाएँ पाकर भी कलाकार नहीं रह जाता। वह किराये का लठैत बेशक बना रहे, वह योद्धा नहीं रह जाता। पिछले सोलह वर्ष में मैंने स्वयं अनेक उदीयमान कलाकारों में यह परिवर्तन देखा है और मानना पड़ा है कि अपनी कलात्मक स्वतंत्रता की रक्षा के संघर्ष में वे परास्त हो गये। कलाकार यदि कलाकार बना रहना चाहता है तो उसे अपने विवेक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये जागरूक और प्रयत्नशील रहना ही होगा।

अपनी स्वतंत्रता के लिये सचेत रहकर और उसकी रक्षा का यत्न करने के लिये कलाकार को यह भी देखना होगा कि उसकी स्वतंत्रता की विरोधी शक्तियां कौन हैं? उसकी स्वतंत्रता पर किस दिशा से अंकुश अनुभव हो रहा है? परिमल के मन्तव्य में वैज्ञानिक विकास की तीव्र गति के साथ मानव के आत्मा और आन्तरिक उन्मेश का समन्वय न हो सकने की जो कठिनाई बतायी है वही वास्तविक मूल प्रश्न है। विज्ञान या भौतिक विकास के कारण मानव समाज के जीवन निर्वाह के ढंग में आ गये परिवर्तनों के कारण समाज की व्यवस्था, विचारधारा और नैतिक भावनाओं में आवश्यक परिवर्तनों की मांग करने की उपेक्षा करने या परम्परागत के मोह के कारण ही बौद्धिक कुण्ठा उत्पन्न होती है। ऐसी अवस्था में स्वतंत्रता की कमी या अंकुश उन्हीं लोगों को अनुभव होता है जो समाज को विकास के लिये आगे ले जाना चाहते हैं। परिमल ने वर्तमान स्थिति में पूंजीवादी और अधिनायकवादी पद्धति के दमन की बात कही है, वह इसी संघर्ष का प्रकट रूप है। पूंजीवादी पद्धति में होने वाला

दमन एक अनुभूत सत्य है । हमारा समाज पूंजीवादी व्यवस्था से नियंत्रित है । इस नियंत्रण और दमन को परिमल के सौम्य साहित्यिक अपने देश में अनुभव करते हैं या नहीं ? करते हैं तो इस दमन के विरोध में उनकी पुकार क्या है ?

अधिनायकवादी या समाजवादी पद्धति हमारे देश या समाज से अभी कोसों दूर है । यदि उसके दमन का भय कुछ साहित्यिकों को अनुभव होता है तो यह केवल काल्पनिक अनुभूति है, जिस का कारण परम्परागत का मोह और नवीन का भय ही हो सकता है । वर्तमान व्यवस्था या शक्ति का समर्थन करने वालों को या उस शक्ति और व्यवस्था की गोद में पलने वालों को तो स्वतंत्रता के प्रति आशंका या अंकुश कभी अनुभव नहीं होता । स्वतंत्रता, अवसर की कमी या अंकुश तो उन्हीं को अनुभव होता है जो वर्तमान व्यवस्था का समर्थन करने वाले संस्कारों और विश्वासों को बदलने के लिये जूझते हैं ।

'उत्तमी की मां' संग्रह पाठकों को सौंपते समय अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अपने जैसे लेखकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात वर्तमान स्थिति को देखकर कह रहा हूँ । आज प्रायः ही मुझे पत्र-पत्रिकाओं के अनुरोध कहानी भेजने के लिये आते रहते हैं, परन्तु इस संग्रह की कहानियाँ भगवान का खेल, न कहने की बात, भगवान के पिता के दर्शन, नकली माल कहानियों को प्रकाशित कराने में बाधा अनुभव हुई ही । आग्रह के उत्तर में कहानी भेजने पर प्रायः दूसरा अनुरोध मिला—कहानी तो बहुत ही अच्छी है, परन्तु यह चीज़ संचालक को न पचेगी या यह कहानी प्रकाशित कर झंझट में नहीं फंसना चाहते या व्यक्तिगत रूप से कहानी पर मोहित हूँ परन्तु पत्र की नीति के आधीन हूँ । आदि आदि ।

आये दिन मुझे ऐसे नये लेखकों की आत्म-कहानी सुननी पड़ती है जो लिखने के लिये सामर्थ्य और प्रेरणा होते हुए भी अवसर नहीं पा रहे क्योंकि उनका विवेक और प्रेरणा समाज की मौजूदा शासक-शक्ति और पद्धति के पक्ष में नहीं । ऐसे भी कई नवयुवक लेखकों और कवियों की करुण कहानी सुनी है जिनकी कलम या जीविका इसलिये छीन ली गयी कि वे मौजूदा व्यवस्था में अन्तरविरोध और अन्याय देखकर अपनी पुकार दबा नहीं सके । परिमल के मन्तव्य में हमारे अपने समाज में प्रतिदिन प्रत्यक्ष अनुभव होने वाले कलाकार के दमन और उसकी परवशता का कोई उल्लेख नहीं दिखाई दिया ।

परिमल को शायद मालूम नहीं कि हमारे समाज में लेखकों या लेखक बनना चाहने वालों के लिये यह सरकारी अनुशासन है कि वे अमुक साहित्यिक समाज में जायें और अमुक में न जायें। हमारी व्यवस्था में कुछ ही दिन पहिले तक ऐसी सरकारी सूचियां बनती रही हैं, जिन्हें सरकार से प्रश्रय पाये पत्रों में और रेडियो में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करने से तो क्या, इन माध्यमों से रोटी का टुकड़ा पा लेने के अवसर से भी वंचित कर दिया जाता रहा है। लेखकों और साहित्यिकों के योग्य सरकारी नौकरियां या विधान सभाओं और लोक सभाओं में कला और साहित्य का प्रतिनिधित्व केवल उनके लिये ही सुरक्षित है जो सरकार की आलोचना न करने का संयम निबाह सकते हों। लोकसभा के एक सपष्टवादी सदस्य का ध्यान इस तथ्य की ओर दिलाने पर उचित ही उत्तर मिला था—"तुम वही जूता खरीदोगे जो फिट आये।" फिट आने की यह मजबूरी क्या लेखक की स्वतंत्रता है

परिमल भी जानता है कि इस देश के अधिकांश प्रकाशन आयोजन कुछ एक पूंजीपतियों की सम्पत्ति हैं, जिनमें विचार स्वातंत्र्य के लिये अवसर नहीं। परिमल की दृष्टि में यह सब बातें लेखक के व्यक्तिगत स्वातंत्र्य पर अंकुश और बाधायें नहीं हैं?

अपने समाज की वर्तमान स्थिति से निरपेक्ष परिमल के सौम्य साहित्यिकों को इस बात की आशंका है कि मानव समाज के भौतिक कल्याण की ओर भौतिक सुविधाओं को ही अधिक महत्व देने वाली व्यवस्था में, भौतिक जनहित को लक्ष्य मानकर व्यक्ति के कलात्मक कृतित्व और व्यक्ति स्वातंत्र्य का दमन हो जायगा या ऐसी व्यवस्थाओं में आज भी हो रहा होगा, मुझे ऐसी आशंका नहीं जान पड़ती। स्वयं परिमल का ही कहना है कि व्यक्ति स्वातंत्र्य और जनहित दो अलग अलग प्रतिमान नहीं हैं, न हो सकते हैं। जनहित की दृष्टि से कलाकार को दिये जाने वाले आदेश में मुझे कलाकार के कृतित्व का दमन नहीं दिखाई पड़ता बल्कि उसे पूर्णतः की ओर ले जाने वाली सद्-भावना ही दिखाई देती है। कलाकार मानव पहले है और कला उसकी मानवता का विकास और स्फुरण मात्र है। जो भावना और व्यवस्था मानवता के विकास और समृद्धि में सहायक हैं वह कला के विकास की शत्रु नहीं हो सकतीं। मानवता की पूर्णतः और उपलब्धि के लिये संयम को स्वीकार करना कला का विनाश नहीं विकास है। साहित्य रचना का उद्देश्य मानवता की

पूर्णता स्वीकार करना और उद्देश्य की पूर्ति के लिये आदेश और प्रेरणा को कलाकार का दमन बताना परस्पर-विरोधी बातें हैं। यदि कलाकार इस उद्देश्य के लिये प्रेरणा और संयम के आदेश से व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मांग करता है तो उसका एक ही अभिप्राय होगा कि वह आत्म-विस्मृति और सामाजिक दायित्व की उपेक्षा की तन्द्रा में निष्क्रिय रहना चाहता है या साहित्य को स्वान्तः सुखाय ही समझता है।

एक लेखक के नाते सौम्य साहित्यिकों से मेरा अनुरोध है कि समाजवादी अधिनायकत्व में क्या हो रहा है? अथवा क्या हो जायगा? इन कल्पनाओं में उलझने की अपेक्षा हम अपने देश और समाज की परिस्थितियों में कलाकार और साहित्य पर होने वाले दमन और उसे अनुभव होने वाले अंकुश की ही चिन्ता क्यों न करें? कलाकार की अभिव्यक्ति के लिये उस स्वतंत्रता की ही बात क्यों न सोचें जिसका अभाव हम आज अनुभव कर रहे हैं?

१५ मई १९५५ यशपाल

१

## उत्तमी की मां

उत्तमी के पिता बाबू दीनानाथ खन्ना की मृत्यु चालीस वर्ष की अवस्था में हो गई थी। परिवार-बिरादरी और गली-मुहल्ले के सभी लोगों ने उनकी असमय, भरी जवानी में मृत्यु पर शोक किया और उत्तमी की मां के प्रति सहानुभूति प्रकट की; परन्तु विपत्ति का कितना बड़ा पहाड़ बेचारी विधवा पर टूट पड़ा था, इसे तो आहिस्ता-आहिस्ता उसी ने जाना।

बाबू दीनानाथ का लड़का बिशन तब एफ० एस० सी० में पढ़ रहा था। उत्तमी की सगाई एक वर्ष पहले, तेरह वर्ष की आयु में, करमचंद सर्राफ के लड़के जयकिशन से हो चुकी थी। करमचंद सेठ की पत्नी केवल अच्छी जात और उत्तमी का खिलती कली जैसा रूप देख कर ही संतुष्ट हो गई थी। बाबू दीनानाथ खन्ना के यहाँ से बड़े भारी दाज-दहेज की आशा तो नहीं थी, परन्तु उनके घराने की प्रतिष्ठा तो थी। उनके दादा और पिता दोनों के समय ही 'उच्ची-गली' के खन्ना लोगों का बड़ा नाम था। उत्तमी की सगाई के समय लड़के वालों ने कहा था—"ब्याह की कोई जल्दी नहीं है। हमारा लड़का अभी पढ़ रहा है। कम-से-कम बी० ए० तो पास कर ही ले।"

विधाता ने उत्तमी की माँ के लिये घटनाओं का न जाने कैसा व्यूह रचा था। उसके पति की मृत्यु के नौ मास बाद लाहौर में शीतला का भयंकर प्रकोप

हुआ। शीतला माता कई घरों से बोलते खिलौने झपट ले गईं। उत्तमी पर भी उनकी कृपा-दृष्टि पड़ी। वे उसे छोड़ तो गईं, परन्तु उसके चेहरे पर अपने कृपाहस्त के चिन्ह भी छोड़ गईं। उत्तमी के गोरे रंग पर शीतला के हल्के-हल्के दाग ऐसे लगते थे, मानो बरसी हुई चांदनी की बूंदों के चिन्ह बन गये हों। गली-मुहल्ले के ताक-झाँक करने वाले लड़के आपस में कहते—"यार, यह तो दगे हुए पीतल की तरह और दमक गई!"

चेहरे पर शीतला के दाग हो जाने से उत्तमी इतनी दुखी और लज्जित थी कि उसने गली में निकलना ही छोड़ दिया। इस के पहले मां कभी किसी काम के लिये या दो-चार पैसे की चीज़ बाजार से ले आने के लिये कहती थी, तो उत्तमी छँलागें लगाती हुई जाती और गली में लड़के-लड़कियों से कोई शरारत या चुहल कर आती थी। पर अब वह बाहर जाने के नाम से ही कोई न-कोई बात बना देती। कई बार मां चिढ़ भी जाती—"हां, सारी दुनिया तुझे ही देखने तो बैठी है।" उत्तमी ने स्कूल जाना भी छोड़ दिया था। मिडिल की परीक्षा देने को थी, सो भी नहीं दे पाई।

उत्तमी के साथ तो शीतला ने जो कुछ किया, सो किया ही; सब से अधिक संताप था, उत्तमी के मँगेतर जयकिशन की मां को। उत्तमी देखने में अब भी चाहे जैसी लगती हो, कहने को तो चेहरे पर ऐब आ ही गया था। जयकिशन की मां ने गहरी साँस लेकर कहा—"हमें क्या मालूम था कि इसे इस उम्र में भी शीतला निकल आयेगी और फिर ऐसी?" कई दिन सोच-विचार करने के बाद जयकिशन की मां ने लड़के का ब्याह तुरन्त कर देने की बात उठा दी।

उत्तमी की मां के लिये लड़की का ब्याह तुरन्त कर देना कैसे सम्भव होता? पति की मृत्यु को अभी दो बरस भी नहीं हुए थे। दीनानाथ रेलवे में दो-सौ रुपये मासिक कमाते थे। उस जमाने में दो-सौ रुपये बड़ी बात थी। पर उनका खर्च भी खुला था। मकान घर का जरूर था, परन्तु रहने भर को ही था। कोई हवेली तो थी नहीं। लड़की के ब्याह के लिये कम-से-कम आधा मकान रेहन रख कर कर्ज़ लिये बिना चारा नहीं था। पति की मृत्यु के बाद उत्तमी की मां घर के एक तिहाई भाग में सिमिट कर शेष के किराये से ही तो गुजारा चला रही थी। उसके भविष्य का एक मात्र सहारा लड़का अब बी० एस-सी०

में पढ़ रहा था। लड़के का भविष्य कैसे बिगाड़ देती ? यही सब सोच कर उत्तमी की मां ने कहा—"अभी लड़की की उम्र ही क्या है, चौदह की ही तो है—( कुमारी लड़कियों की माताएँ प्रायः ही बेटी के चौदह की हो जाने पर बेटियों की आयु में दिन और मास नहीं जोड़तीं ) बरस-दो बरस ठहर जायँ। उनका स्वर्गवास हुए तीन बरस तो हो जायँ।"

जयकिशन की मां को नाराज हो जाने का कारण मिल गया। उसने बिरा-दरी में घूम-घूम कर कहना शुरू किया—"इतना ही मिजाज है, तो बैठें। बाद में हमें कोई दोष न दे। हमें अपनी लड़की की भी तो शादी करनी है····।"—और उसने जयकिशन के सगुन में आये एक सौ एक रुपये और नारियल लौटा दिया।

उत्तमी की मां ने सिर पीट कर कहा—"····अगर ऐसा ही था, तो हमें छः महीने का समय तो दिया होता। मैं मकान गिरवी रख कर ही लड़की का ब्याह कर देती····।" अब वह बिरादरी में दुहाई देती, तो इस बात की डोंडी और पिटती कि लड़की में कोई तो ऐब होगा ही, तभी तो सगाई छूट गई।

उत्तमी ने जयकिशन को कभी देखा नहीं था, परन्तु उसने भयंकर अपमान महसूस किया कि कुरूप हो जाने के कारण उसकी सगाई टूट गई। उसके भविष्य का फैसला हो गया। उसका मन चाहा कि मर जाये। पहले वह बुनने या बीनने के लिये बैठती थी, तो मकान की गली में खुलने वाली खिड़की में। यदि कोई लड़का संकेत से शरारत करता, तो वह धमकाने के लिये भौंहें चढ़ा लेती या मुंह चिढ़ाकर अँगूठा दिखा देती थी। इन खेलों में उसे भी मजा आता था। अब वह हवा या रोशनी के लिये बैठती, तो आँगन में खुलने वाली खिड़की में। केशों में फूल और चिड़ियाँ बनाना, दंदासे से दाँत उजले और होंठ लाल करना और कलफ़ लगी रंगीन चुन्नियों का शौक भी उसने छोड़ दिया था।

विधवा हो जाने के बाद से उत्तमी की मां ने धर्म-कर्म का नियम आरंभ कर लिया था। मुंह अँधेरे ही रावी पर स्नान करने चली जाती। लौटते समय ग्वाले के यहाँ से दूध और चौक से सब्जी लेती आती। बिशनदास नौ बजे कालिज चला जाता था इसलिये झटपट चूल्हा जला कर खाना बना देती। अब उत्तमी भी सयानी हो गई थी। भाई के लिये खाना बना कर उसे खिला देने का काम लड़की पर छोड़, उत्तमी की मां पति के शोक में काला लहँगा

पहन और राख से रँगी चादर ओढ़ कर लड़की के लिये वर की तलाश में बाहर निकल जाती। लाहौर, अमृतसर में विवाह के सम्बंध प्रायः स्त्रियाँ ही आपस में तय कर लेती थीं। पुरुषों को स्वीकृति भर ही देनी होती थी। उत्तमी की मां ने सूतरमंडी, पापड़मंडी, मच्छीहट्टा, सैदमिट्ठा, गुमटी-बाज़ार, लुहारीमंडी, मोहल्लों के मुहल्ले में जाति वालों का एक घर न छोड़ा। वह सब को समझाया करती—"लड़की के बाप को मरे अभी दो बरस नहीं हुए, लड़की का ब्याह मैं कैसे कर दूं! लड़की को शीतला जरूर निकली थी, पर अब भी कोई चल कर देख ले उसका रूप-रंग। हजारों में एक है।"

लड़कों की माताएँ अपना पीछा छुड़ाने के लिये सहानुभूति से बेबसी प्रकट कर, कह देतीं—"तुम तो जानती ही हो बहन, आजकल के लड़के सुनते कहाँ हैं। कह देते हैं, पढ़ाई कर लें, तो ब्याह करेंगे।" कोई लड़के की पढ़ाई का भारी खर्चा बता कर बहुत बड़े दहेज के लिये मुंह फैला देती। उत्तमी की मां गाल पर उँगली रखे सुनती और सिर झुका कर गहरी साँस ले, लौट आती।

उत्तमी की मां ने मकान की निचली मंजिल तो रेलवे में काम करने वाले एक बुजुर्ग सिख बाबू को किराये पर दे दी थी और ऊपर की आधी मंजिल का भीतर का भाग, समीप ही लड़कियों के स्कूल में पढ़ाने वाली एक ब्राह्मणी विधवा अध्यापिका को दे दिया था। अध्यापिका का लड़का शिवराम भी लगभग बिशन की ही आयु का था और डी० ए० वी० कालिज में, बी० ए० में पढ़ता था। बिशन और शिवराम में जल्दी ही मेल हो गया। जैसा कि लाहौर में कायदा था, दोनों के यहाँ बनी दाल-सब्ज़ी इधर-उधर दी-ली जाने लगी। शिवराम अंग्रेजी में तेज़ था। बिशन को मदद भी देता रहता। शिवराम कभी कोई चीज़ माँगने के लिये बिशन को पुकार लेता और चीज़ लेने-देने के लिये उस के हिस्से की ओर भी चला जाता। उत्तमी की मां को वह 'मासीजी' पुकारने लगा था।

पहले तो उत्तमी सामना होने पर भी कोई उत्तर न देती; या तो सामने से हट कर भाई को पुकार देती या चुप ही रह जाती कि उत्तर न मिलने पर अपने आप समझ जायगा। एक दिन एकान्त देख शिवराम ने इतना कह दिया—"मुंह का बोल इतना महँगा है कि पुकारने पर जवाब भी नहीं मिलता। ना ही कह दिया करो।"

उत्तमी मुस्कराये बिना न रह सकी और फिर पुकारने पर जवाब दे देने लगी।

कुछ दिन बाद फिर एक दिन उत्तमी नीचे आँगन में नल से पानी भर रही थी। शिवराम भी अपनो गागर ले कर पहुँच गया। एकान्त देख कर उसने कहा—"ओहो, इतना घमण्ड है ?"

"घमण्ड काहे का ?"—उत्तमी ने सिर झुकाये पूछ लिया।

"हुस्न का, और काहे का।"—शिवराम बोला। मानों उत्तमी के हृदय के सीप में स्वाति की बूंद पड़ गई, जिसके अभाव में वह जीवन से ही निराश हो रही थी। पुराना गर्व जाग उठा।

"तुम्हें होगा। हम तो बदसूरत हैं।"—सिर झुकाये उत्तमी बोली, परन्तु एक आँख से उसने भी शिवराम की ओर देख लिया।

"हम तो तुझ पर मर गये"—शिवराम ने कहा।

उत्तमी अँगूठा दिखाकर ऊपर भाग गई। अब दोनों में ताक-झाँक होने लगी। एकान्त मिल जाता तो बातें भी करने लगते। अवसर भी मिल ही जाता था।

उत्तमी की मां तो लड़की के लिये वर की खोज में बावली हो रही थी। लाहौर में सफलता न पाकर वह अमृतसर के भी चक्कर लगाने लगी। सुबह आठ-नौ बजे की गाड़ी से चली जाती और सूर्यास्त के समय लौटती। बिशन को चार-पांच बजे तक कालिज में रहना पड़ता था। शिवराम की मां भी साढ़े चार से पहले न आ पाती। वह कभी-कभी ढाई-तीन बजे ही लौट आता।

उत्तमी दोपहर में नल खाली रहते घर का पानी भर लेती थी। एक दिन शिवराम कालिज से ढाई बजे लौट आया। आँगन से जीने की ओर जा रहा था, तो देखा कि उत्तमी नल पर गागर भर रही थी। शिवराम ने शरारत से इशारा किया। उत्तमी ने मुंह चिढ़ा दिया।

उत्तमी गागर कमर पर लिये ऊपर चढ़ रही थी। जीने का मोड़ पार किया तो गागर कमर से उठ गई।

उत्तमी के मुंह से निकल गया—"हाय !"

शिवराम ने मुंह पर उँगली रख कर संकेत किया—"चुप !" और होठों से संकेत कर कहा—"एक बार !"

उत्तमी ने दुपट्टे के आँचल से होंठ ढंक कर सिर हिला दिया। शिवराम ने गागर ऊपर की सीढ़ी पर रख कर उत्तमी को बाँहों में खींच लिया, तो उत्तमी स्वयं ही उस से चिपट गई। इसके बाद शिवराम और उत्तमी दूसरों की निगाहें बचा कर अपना खेल खेलते रहे। ज्यों-ज्यों उत्तमी को प्यार का रस आता गया, वह दिलेर होती गई। जब भी मौका मिलता, एक चुम्बन चुरा लेती या शिवराम के शरीर से रगड़ कर ही निकल जाती। उसने अपने लिये नयी सलवार सी, तो नये फैशन की—खूब खुले पौंचे की; और कमीज कमर से खूब चुस्त; इतनी कि मां को डांटना पड़ा—"मरी, इतने तंग कपड़े सियेगी, तो कितने दिन चलेंगे ?" इतने दिन उत्तमी किसी ऊँची जगह में बरसात से भरते हुए तालाब की तरह स्थिर थी। शिवराम ने जोर लगा कर उसके बाँध का एक पत्थर खिसका दिया। अब उसके यौवन का वेग ही अपने बहाव के मार्ग को चौड़ा करता जा रहा था।

दशहरे की छुट्टियाँ आईं। सब लोग घर पर रहते थे। यह रौनक शिवराम और उत्तमी के लिये यंत्रणा बनी हुई थी। अवसर के लिये तड़प-तड़प कर वे तरसती आँखों से एक दूसरे को देख कर रह जाते। रावण जलने के दिन शिवराम की मां और उत्तमी की मां भी मेले में गईं। शिवराम और बिशन भी गये। उत्तमी नहीं गई। उसने कहा—"मेरा दिल नहीं करता।"

मेले में शिवराम और बिशन बिछुड़ गये, तो बिशन भी थोड़ी देर बाद ही लौट आया। मकान की ड्योढ़ी का दरवाजा भीतर से बन्द था। सरदार जी का परिवार भी मेले से अभी नहीं लौटा था। बिशन ने साँकल खटखटाई। कोई उत्तर न पाकर फिर खटखटाई। तब ऊपर से उत्तमी ने झाँका और घबरा कर नीचे आकर दरवाजा खोल दिया।

पिछले कई दिन से बिशन को उत्तमी की चंचलता खटक रही थी। उसने डाँटा भी था कि क्या सब के मुंह लगती है। बिशन को उत्तमी का चेहरा देख कर संदेह हुआ। ऊपर आया तो देखा कि शिवराम भी अपने कमरे में मौजूद था। बिशन आपे से बाहर हो गया। एक थप्पड़ उत्तमी को मार कर उसने पूछा—"क्या हो रहा था ?"

उत्तमी कोई ठीक-ठीक कैफियत न दे सकी, तो उसका अपराध खुल गया। बिशन ने उत्तमी को खूब पीटा और मां के लौटने पर किरायेदारों को गाली देकर तुरन्त निकाल देने के लिये कह दिया। इस घटना को लेकर उत्तमी और शिवराम की मां में लड़ाई हो गई। शिवराम की मां मकान तो छोड़ गई, पर साथ ही बहुत कुछ बक-झक भी गई।

ऊपर की मंजिल का आधा भाग किराये पर देना जरूरी था ही। इस बार उत्तमी की मां ने सोच-समझ कर लगभग पैंतीस साल की आयु के एक बाबू को जगह दी। बाबू सालिग्राम की दो छोटी लड़कियां थीं और लड़कियों की भारी-भरकम मां थी। कुछ दिन बाद नये किरायेदारों से भी अपनापन हो गया। पिछली घटना की उनसे कोई चर्चा नहीं की गई। बाबू सालिग्राम उत्तमी की मां को 'भैनजी' कहने लगे। उत्तमी को 'बेटी' ही कहते थे। सालिग्राम एक बीमा कम्पनी के दफ्तर में काम करते थे। उन्होंने उत्तमी की मां को, लड़की को प्राइवेट पढ़ा कर इम्तहान दिला देने के लिये उत्साहित किया। फिर संध्या समय कुछ देर के लिये पढ़ाने भी लगे। उत्तमी के सिर पर हाथ फेरते-फेरते गालों को भी सहला देते और पीठ थपकते-थपकते आलिंगन कर लेते। उत्तमी को चाशनी का स्वाद लग चुका था। उसके अभाव में पुराने गुड़ से ही वह संतोष कर लेती थी। सात ही मास गुजरे होंगे कि उत्तमी की वजह से सालिग्राम के घर में झगड़ा होने लगा। सालिग्राम की पत्नी ने उत्तमी की मां से साफ कह दिया—"तुम्हारी लड़की को हमारी तरफ आने की जरूरत नहीं।"

उत्तमी कालिज में पढ़ने वाली लड़की तो थी नहीं कि सत्रह वर्ष की आयु तक भी सगाई-ब्याह न होने से लोगों को विस्मय न होता। पहली सगाई टूट जाने की बात से दूसरी सगाई हो सकना यों ही मुश्किल हो रहा था; तिस पर बदनामी फैल जाती, तो क्या होता! उत्तमी की मां ने गली में कहा कि फिरोजपुर में उसके छोटे भाई के लड़के का मुंडन है और उत्तमी को लेकर फिरोजपुर चली गई।

उत्तमी की मामी को भानजी का स्वभाव बहुत अच्छा लगा। सप्ताह भर बाद उत्तमी की मां लौटी तो उत्तमी को कुछ दिन के लिये फिरोजपुर ही छोड़ आई।

उत्तमी की आँखों में ऐसी प्यास, और यौवन के उभार में कुछ ऐसा आकर्षण था कि नौजवानों और अधेड़ों के लिये भी उसकी उपेक्षा कठिन हो जाती। उसकी प्रकृति भी खालिस घी की सी हो गई थी कि पुरुष के सामीप्य की आँच पाते ही उसे पिघलने से बचाया नहीं जा सकता था। सवा बरस मुश्किल से बीता होगा कि उत्तमी मामी के लिये मुसीबत हो गई। कई बार मामी ने उत्तमी को पीटा और उसकी वजह से मामा ने मामी को मारा। आखिर एक दिन मामी उत्तमी को लेकर लाहौर आ गई और ननद की 'सुलक्षणी बेटी' की बाबत बहुत कुछ बक-झक कर उसे छोड़ गई।

उत्तमी की मां ने रो-रो कर अपना माथा ठोका और उत्तमी को गालियां दीं—"तुझे अपने गले में बांध कर मैं किस कुएँ में जा मरूँ? मालूम होता कि तू ऐसी चुड़ैल निकलेगी, तो अपनी कोख फाड़ कर तुझे मार डालती और मर जाती!"

उत्तमी पर भयंकर पहरा लग गया। उसकी अवस्था जेल की कोठरी में बन्द कैदी से भी बदतर हो गयी। उसके गली की खिड़की की ओर जाते ही भाई और मां की आँखें सुर्ख हो जातीं और गालियों की बौछार पड़ जाती।

उत्तमी ने इन सब नियंत्रणों और लांछनों का कोई विरोध नहीं किया। वह स्वयं मन में लज्जित और कुंठित थी। बैठी-बैठी सोचा करती, जो कुछ मेरे भाग्य में नहीं था, वह पाप मैंने क्यों किया। मर जाने की इच्छा हुई, पर मर नहीं सकी। कोठरी में बन्द रहने से उसकी भूख कम हो गई और चेहरे का नूर भी उड़ गया। खुर्मानी की सी ललाई लिये गोरा रंग अब बरसात के दिनों में किसी टीन की चादर के नीचे उग कर लम्बी हो गई घास की तरह पीला-सफेद-सा हो गया। प्रायः सिर दर्द रहने लगा। सिर दरद से फटने लगता, तो उत्तमी मुंह से कुछ न बोल कर दुपट्टे से सिर को कस कर बाँध लेती। मां कैसे न समझती। पूछती—"क्या हुआ है री, सिर को? ला दवा दूं।···तेल रगड़ दूं। कैसे खुश्क हो रहा है, जैसे चील का घोंसला?" मां उसकी बाँह पकड़ कर देखती और कहती—"तेरा बदन तो गरम लग रहा है····"

"कुछ नहीं मां,"—उत्तमी टाल जाती। मुंह से एक शब्द भी बोले बिना उसे दो-दो दिन बीत जाते।

उत्तमी की मां बेटी को सुबह नदी स्नान के लिये साथ ले जाने लगी कि कुछ तो ताजी हवा उसे मिलेगी। 'चक्कीवाली गली' में बुधवार के दिन माता ज्ञानमयी के यहाँ स्त्रियों का सत्संग जुड़ता था। माता ज्ञानमयी को प्राय: बत्तीस वर्ष की आयु में ज्ञान हो गया था। तब से वे पति-पुत्र को छोड़ कर बैरागिन बन गई थीं। समाधि भी लगाती थीं। भक्तिनें उनके चारों ओर बैठ कर कीर्तन करतीं और उनकी आरती उतारतीं। उत्तमी की मां बेटी का मन बहलाने और उस पर अच्छा प्रभाव डालने के लिये उसे सत्संग में भी ले जाने लगी।

माता ज्ञानमयी उपदेश देती थीं—"गृहस्थ के संग से मुक्त हो कर ही आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। जेवर और पति-पुत्र से मिलने वाले आनन्द से बड़ा आनन्द मन के भीतर ब्रह्म में समा जाने का आनन्द है। शरीर का दु:ख भ्रम है। ब्रह्म के ध्यान में रम जाने से शरीर के कष्टों की माया छूट जाती है।" माताजी उपदेश देतीं, तो उनका चेहरा आनन्द से दमकने लगता। भक्तिनें उनके लिये व्यंजनों का प्रसाद बना कर लातीं। यदि माता जी उसमें से एक ग्रास खा लेतीं, तो वे कृत-कृत्य हो जातीं। माता जी को सुगन्धित जल से स्नान कराया जाता और बादामरोगन में सुगन्ध मिला कर उनके शरीर की मालिश की जाती। वे अपने हाथ से कुछ न करतीं। माताजी उपदेश देतीं—"प्राणायाम से समाधि लगा कर ब्रह्म के ध्यान में लीन हो जाने से शरीर के सब कष्ट दूर हो जाते हैं।....इच्छा का दमन करो। मन सब से बड़ा शत्रु है। मन को मारो। यही सब से बड़ा सुख है, यह ही सब से बड़ी विजय है।"

उत्तमी ने मार्ग पा लिया। वह इच्छाओं के रोकने का आनन्द अनुभव करने लगी। वह अपने शारीरिक कष्ट की उपेक्षा कर उस कष्ट को आनन्द समझने का प्रयत्न करने लगी। यह आनन्द था, जिसके लिये उसे किसी भी लांछना और प्रतारणा का भय नहीं था। इस में लोगों का आदर पाने का संतोष था। उसने नमक खाना छोड़ दिया, फिर मीठा खाना भी छोड़ दिया। चौबीस घन्टे में, एक बार खाने लगी। एक समय केवल एक ही चीज खा लेती या सब चीजों को एक में मिला कर खाती! कहती—"इसमें ऐसा आनन्द है जो पहले कभी अनुभव नहीं किया।"

उत्तमी भी माता ज्ञानमयी की संगति में समाधि का अभ्यास करने लगी। समाधि के लिये उसकी लगन और हठ देख कर सत्संग की स्त्रियों में उसकी

प्रतिष्ठा भी होने लगी। इस प्रतिष्ठा में एक ऐसा संतोष था, जो पुरुष के स्पर्श से कहीं अधिक उन्मादक था !

उत्तमी की मां किसी समय बेटी को चुप और उसके चेहरे पर ज्वर का ताप अनुभव कर पूछ बैठती—"कैसी तबियत है, उत्ती ?"

उत्तमी आँखें मूंदे ही उत्तर देती—"आनन्द है माता जी, आनन्द है !" उसकी बोल-चाल और ढंग बदल गये। अपने शरीर और कष्ट के सम्बन्ध में बात करना उसे पाप जान पड़ता था।

मां ने कई बार बेटी का शरीर छू कर देखा। उसे प्रायः हर समय ज्वर रहता था। वह उसे हकीम संतसिंह के यहाँ ले गई। हकीम ने दो-तीन बार नुसखे दिये, फिर मां को समझाया—"दवाई बेकार है, लड़की जवान है। उसे कोई बीमारी नहीं है, ब्याह कर दो। अपने आप ठीक हो जायेगी।"

उत्तमी की मां को बुरा लगा। उस ने फ़ीस दे कर उत्तमी को एक मेम डाक्टरनी को दिखाया। डाक्टरनी ने भी उत्तमी के पूरे शरीर को खूब अच्छी तरह परीक्षा कर वही बात दूसरे शब्दों में कही। मेम डाक्टरनी को बना-संवार कर बात करने की भी ज़रूरत नहीं थी। उसने कहा—"यह तुम्हारा लड़की का शादी मांगता····उसको मर्द मांगता।"—और ताकत की दवाई देकर, खुराक बढ़ाने के लिये कहा।

उत्तमी की मां ने लड़की के लिये कुंआरे वर की आशा छोड़ कर किसी-न किसी तरह ब्याह कर देने के विचार से मृत-पत्नीक वर ही ढूंढ़ना शुरू किया। एक-दो बच्चों वाले आदमी तैयार भी हुए। पर उनके घर की स्त्रियाँ उत्तमी को देखने आईं, तो इन्कार कर गईं—"हाय, लड़की तो बीमार है।"

उत्तमी की मां ने समझाया—"ऐसे ही पाँच-सात दिन से जरा सर्दी-बुखार हो गया है। दो-चार रोज में ठीक हो जायेगी !" पर उत्तमी का चेहरा तो मां की बात का समर्थन नहीं करता था।

उत्तमी की मां परेशान थी। उत्तमी दवाई खाती नहीं थी। जबरदस्ती खिलाने पर कुछ फायदा दिखाई नहीं देता था। सबसे बड़ी चिंता उसे हो रही थी, लड़की के बैराग से। जब से वह समाधि लगाने लगी थी, आँखें भीतर धँसती जा रही थी। उत्तमी की मां बेटी की चिन्ता करके रात में खूब रोती।

उसे करमचन्द सर्राफ की बहू पर क्रोध आता। सब उसी की करतूत थी। उत्तमी की मां भगवान से मांगती—"मेरे राम जी, उसके सामने भी ऐसे ही बेटी का दुख आये। खुद छः बच्चों की मां हो कर अब भी जने जा रही है......" सोचती, अपनी उत्तमो को कहाँ जा कर गाड़ दूं ? हाय यों ही सूख-सूख कर मरेगी लड़की !

जयकिशन की मां को सब शाप दे चुकने के बाद उत्तमी की मां को स्वयं अपने ऊपर गुस्सा आने लगा—"यह सब मैंने ही किया। सब मेरा ही कसूर है। तभी मैं मकान बेच कर इसका ब्याह कर देती, तो करमचन्द सर्राफ क्या कर लेता ? लड़की का ब्याह तब हो गया होता, तो अपने आप रस-बस जाती ! यह सब भटकनें होती ही क्यों ? अब उसकी ऐसी सेहत में उसे कौन लेगा और....सेहत कैसे ठीक हो मरी की ? मैं लड़के का मोह कर गई। लड़कों के लिये तो दुनिया में बीस रास्ते होते हैं। लड़की को तो हांथ-पांव बाँध कर किसी को सौंपना होता है। उसे कोई न ले तो बेचारी क्या करे ?"

बिशन बी० एस-सी० पास कर के रुड़की इंजीनियरिंग कालिज में भरती हो गया था। वहाँ भरती होते ही 'लोहे के तालाब' के हीरालाल कपूर ने उसे अपनी लड़की का सगुन देकर रोक लिया। रुड़की में भरती होने का मतलब ही था कि वहां से पास होते ही उसे तीन सौ पचास रुपये की नौकरी कहीं भी मिल जायगी। उत्तमी की मां सोचती—लड़के के लिये तो मैंने सब कुछ किया, पर लड़की के गले पर छुरी फेर दी।

लड़की की वजह से किरायेदारों से दो बार झगड़ा हो जाने के बाद उत्तमी की मां ने निश्चय कर लिया था कि ऊपर की मंजिल में किसी मर्द को किराये पर जगह नहीं देगी। उसने अपने साथ की जगह 'मच्छी-हट्टे' के लड़कियों के स्कूल में पढ़ाने वाली एक विधवा मास्टरनी और उसकी मां को दे दी थी। मास्टरनी के यहाँ कभी-कभी मिलने-जुलने वाले मर्द भी आने लगे, तो उत्तमी की मां को यह अच्छा नहीं लगा था। जब उत्तमी फ़िरोजपुर से लौटी थी तो मां ने डाँट दिया था—"मास्टरनी से मेल-जोल की जरूरत नहीं है।"

अब उत्तमी की मां का व्यवहार विधवा जवान मास्टरनी के प्रति भी बदल गया था। मास्टरनी को कभी मोज़ा या स्वेटर बुनते देखती, तो उलाहने देने लगती—"वाह, तुम इतने गुण जानती हो। अपनी छोटी बहिन उत्तमी को

भी कुछ सिखाया करो न !"—और उत्तमी को पुकार लेती—"अरी उत्तां, आ देख, तेरी बहिन कितना खूबसूरत स्वेटर बुन रही है...."

मां घर में बनी सब्जी-तरकारी भी उत्तमी के हाथ मास्टरनी के यहाँ भिजवाने लगी—"जा, पड़ोसियाँ को दे आ ! वंड खाये खण्ड खाये, कल्ला खाये मैल्ला खाये।" ( बाँट कर खाये खाँड खाये, अकेला खाये मैला खाये )। खास कर मास्टरनी के यहाँ मर्द मेहमान आये हों, तो जरूर ही किसी बहाने से उसे बार-बार उधर भेजती, परन्तु उत्तमी के हाथ-पाँव तो अब ऐसे चलते थे जैसे कठपुतली के हों और आँखें ऐसी हो गई थीं, जैसे पत्थर की मूर्ति में कौड़ियां जमा दी गई हों।

अमृतसर में ब्याही उत्तमी की मासी के लड़के लालचन्द को दो बरस पहले लाहौर में नौकरी मिल गई थी। उत्तमी की मां की बहिन को आशा थी कि बेटे को मौसी के यहां ही रहने की जगह हो जायगी। उस समय उत्तमी की मां ने साफ इनकार कर दिया था—"मेरे पास जगह कहां ?"

एक दिन उत्तमी की मां लालचन्द के यहाँ पहुँची और उलाहना दिया—"हाँ, अब घर में हम मां-बेटी अकेली रह गयी हैं, तो कोई क्यों मुंह दिखायेगा ! बिशन था तो सभी आते थे।"

भानजे के घर आने पर उसने विस्मयजनक खातिर की। उत्तमी को भी धमकाया—"क्या पागल है, घर आये लड़के से बात भी नहीं करती। खामख्वाह शरम से मरी जा रही है।" फिर लालचन्द के सिर पर हाथ फेर कर कहा—"बेटा, अकेले मेरा दिल बहुत उदास हो जाता है। तू दो-चार दिन यहीं रह जाया कर न, क्या हर्ज है ?......परसों पहली बार सावन बरसा, तो सोचा कि पूड़े बनाऊँ। पर क्या बनाती ? किसे खिलाती ? यह मेरी लड़की ऐसी है कि इसे कुछ शौक ही नहीं। क्या करे बिचारी ? यह भी तो अकेली उदास हो जाती है। कोई दो बात करने को भी तो नहीं !" और अचानक मां को याद आ गया—"हाय मैं मरी ! ले सुन, संतू हलवाई के यहाँ से ताजी बरफी ली थी। रास्ते में वीरांवाली से दो बातें करने बैठी थी, दोना वहीं छोड़ आई। अभी ले आऊं, दो मिनट में। तू बैठ ! मैं शाम का खाना खिला कर ही जाने दूंगी। री उत्तां, मूंग की दाल तो भिगो दे, लड्डू बनाने के

लिये।"—और उत्तमी की मां काला लहँगा पहन, चादर ओढ़ कर सीढ़ियाँ उतर गईं।

मां लौटी तो देखा कि लालचन्द अधिक खा जाने के कारण लेटा हुआ विस्मय और भक्ति से उत्तमी की ओर देख रहा है। उत्तमी एक आसन बिछा कर समाधि लगाये बैठी है और कुछ-कुछ देर बाद—'ओ३म्! ओ३म्! आनन्द! आनन्द!" कहे जा रही है।

मां एक बार फिर उत्तमी को डाक्टर के यहाँ ले गई। डाक्टर ने दवाई लिख कर कहा—"फेफड़ा बहुत खराब हो रहा है—बिलकुल आराम से खाट पर लेटी रहें, चलें-फिरें बिल्कुल नहीं।"

मां ने अपने हाथ से चारपाई पर बिस्तर लगा कर उत्तमी को लिटा दिया और डाँटा—"उठेगी, तो याद रखना?....कोई जरूरत नहीं, बुध समाज जाने की...."

मां को लग रहा था कि लड़की को ज्ञानमयी के सत्संग में ले जा कर उसने और गलती की। जोग-बैराग की रस्सी का फन्दा उसने खुद अपने हाथों बेटी के गले में डाल दिया था। उत्तमी को ज्ञान के सत्संग में जाने और समाधि लगाने से रोकना अब सम्भव नहीं था। ज्ञान के अधिकार से वह अब अपने आप को मां से ऊपर समझती थी। सत्संग में जब वह देर तक समाधि लगाये बैठी रहती, तो भक्तिनें भक्ति-भाव से उसके आगे हाथ जोड़, सिर झुका कर आदर करतीं। माता ज्ञानमयी सब को सुना कर कहतीं—"इस लड़की ने कितनी जल्दी आनन्द प्राप्त कर लिया।........ब्रह्म इस लड़की से प्रसन्न हैं।....यह पिछली जन्म की योगी है।"

उत्तमी की मां ने कई दिन सोचकर बेटी को प्यार से डाँटा—"मरी, तू किसी दिन मां के भी काम आयेगी? एक चिट्ठी फिरोजपुर घनीराम (उत्तमी के मामा) को लिख दे। मैं बताती हूँ, तू लिख कि लड़की की बाबत भी सोचना है।....बिशन की पढ़ाई का खर्चा भेजना मुश्किल हो रहा है। सलाह करनी है कि कुछ जेवर गिरवी रख कर रुपया उधार ले लें। मुझे तो औरत समझ कर सब ठग लेते हैं। तू चार दिन के लिये आ जा। किराये, खर्चे की परवाह न करना........"

जिस समय धनीराम उत्तमी के घर पहुँचा, मां लड़की को दवाई पिलाने की कोशिश कर रही थी। उत्तमी कह रही थी—"यह माया है, यह माया का पाप क्षीण हो रहा है। शरीर की माया में और बोझ बढ़ाने से क्या फायदा ?"

धनीराम उत्तमी की सूरत देख कर हैरान रह गया। फिरोजपुर से चलते समय उसकी आँखों में उत्तमी का वही उमड़ते जोबन का बेबस कर देने वाला रूप फिर रहा था। एक बार फिर उत्तमी के पास जाने और उसके साथ एकान्त पाने की आशा से उसने उमंग भी महसूस की थी।

उत्तमी ने धनीराम को देखा भी और नहीं भी देखा, जैसे पहचानने की जरूरत ही न समझी हो।

धनीराम ने चिंता से पूछा—"क्या हो गया है इसे ? बहुत कमजोर हो गई जान पड़ती है !"

उत्तमी की मां भावज से सुनी बातें याद कर यों ही शरम के मारे मरी जा रही थी। हकीम, डाक्टरनी की बताई उत्तमी की बीमारी की बाबत क्या बताती। जो मुंह में आया कह गई—"....ऐसे ही मामूली-मामूली बुखार सा रहता है। कुछ दिन से भूख नहीं लगती। अकेले पड़ी रहती है...." और भाई से आँखें चुरा कर बोली—"तुझे बहुत पसीना आ रहा है। जरा बैठ, पसीना सूख जाय तो नहाने के लिये उत्तमी तौलिया-साबुन दे देगी। मैं बाजार से तेरे लिये कुछ ले आऊँ।"

मां दुपट्टा ओढ़ कर सीढ़ियाँ उतरने लगी और मन में भगवान का स्मरण कर रही थी—"मेरे राम जी, तेरे आगे मैं ही दोषी हूँ। किसी तरह लड़की के प्राण बचा। किसी तरह इसकी तबीयत सम्भले...."

अवसर पाकर धनीराम के मन में पिछली बातें उमड़ आईं। वह उत्तमी की चारपायी पर जा बैठा और उसके कन्धे पर हाथ रख कर, स्नेह से उसने पूछा—"उतां, क्या हो गया तुझे ?....सब भूल गई ?"

उत्तमी मुस्कराई और धनीराम की ओर ऐसे देखा, जैसे दूर खड़े कुत्ते को बिल्ली देख रही हो। फिर बोली—"क्या देखता है ?" फिर अपने हृदय पर उँगली रख कर कहा—"ब्रह्म को देख ! इसमें ब्रह्म समाया है, उसे देख !

समाधि लगा ! तुझे दिखाई देगा !"—उत्तमी का चेहरे लाल हो गया। उसने आँखें मूंद लीं और सांस खींचती हुई बोली—"ओ३म् ! ओ३म् ! ओ३म् ! आनन्द ! आनन्द ! आनन्द !"

धनीराम डर-सा गया। घबराकर परे जा बैठा। उत्तमी की विवश कर देने वाली चितवनों और उत्तेजित कर देने वाले जोबन की जगह उसके शीर्ण शरीर से रोग झड़ रहा था—उसके प्राण जैसे मुक्त होने के लिये छटपटा रहे थे।

धनीराम तीसरे दिन ही लौट गया। बहिन से कोई खास बात नहीं हो सकी। उत्तमी की मां ने कहा—"क्या बताऊँ, इस समय तो लड़की की बीमारी की वजह से मन ठीक नहीं है। जाने राम जी क्या करते हैं ?"—और वह जोर से रो उठी। धनीराम ने समझा बहिन को भाई से बिछुड़ने का दुख है, परन्तु बहिन सोच रही थी—लड़की के प्राण बचाने के लिये वह क्या करे ? वह सब कुछ कर रही थी परन्तु कुछ हो ही नहीं रहा था।

उत्तमी को खांसी के वक्त बलगम के साथ खून भी आने लगा। मां घबरा कर डाक्टर को बुला लाई। डाक्टर ने और अधिक दवाइयां लिख दीं और चारपायी से बिलकुल न उठने की ताकीद कर दी।

मां ने रोते हुए हाथ जोड़ कर उत्तमी को समझाया—"बेटी, मान जा। कुछ दिन के लिये समाधि लगाना छोड़ दे। बुध समाज न जा। खाँसी का खून बन्द हो जायगा, तो जो जी चाहे करना।"

पर उत्तमी नहीं मानी। उसने मां को ज्ञान की बात बताई कि मुंह से मल निकल रहा है। शरीर से जितना मल निकलेगा, आत्मा उतनी ही पवित्र हो जायगी।

बुध के दिन उत्तमी ने सत्संग में जाने की जिद्द की। मां को लगा कि उस की इच्छा पूरी न करने पर कहीं कुछ और न कर बैठे। वह उसे डोली में बैठा कर सत्संग में ले गई।

सत्संग की भक्तिनों को उत्तमी के सूखे शरीर और गढ़ों में धँसी हुई आँखों से तप का तेज टपकता दिखाई देता था। सब भक्तिनें उत्तमी को भक्ति-भाव से घेर कर हाथ जोड़ कर बैठ गईं।

उत्तमी ने भक्तिनों की ओर गर्व की दृष्टि डाली। उसके हृदय में उत्साह भर गया। समाधि का आसन लगा कर 'ओ३म्' उच्चारण करते हुए उसने कुम्भक प्राणायाम से साँस खींच ली। दो भक्तिनें उत्तमी को पंखा झलने लगीं और शेष 'ओ३म्, आनन्द' का जाप कर रही थीं।

प्राणायाम के लिये साँस भरने के कुछ ही क्षण बाद उत्तमी को ज़ोर की खाँसी आई और खाँसी के साथ ही खून का फव्वारा-सा मुंह से निकल पड़ा। उत्तमी ने 'ओ३म्' कहने का यत्न किया, परन्तु शब्द पूरा हो सकने के पहले ही उसकी गर्दन झूल गई और वह निष्प्राण हो गई।

भक्तिनों में भगदड़ मच गई। उत्तमी की मां ने चीखते हुए आगे बढ़ कर बेटी के निर्जीव शरीर को बाँहों में ले लिया। तब तक भक्तिनों ने सुध सम्भाल ली। 'ओ३म्, आनन्द' का जाप करते हुए उन्होंने निश्चय किया कि योगिनी उत्तमी ब्रह्म में लीन हो गई।

उत्तमी की मां उस परम आनन्द का भाग न पा कर पागलों की तरह चीखती रही—"हाय, मेरी बेटी को, मेरी बच्ची को सब ने मिल कर मार डाला! हाय मेरी बच्ची, तूने दुनिया का क्या देखा? हाय, तू भूखी-प्यासी, तरसती ही मर गई...."

२

## नमक हराम

चेतराम ने अठारह बरस तक बम्बई में जीतूमल-खेमचन्द की कोठी पर नौकरी की थी। ढलती उम्र में अपनी कमाई लेकर मारवाड़ लौट गया और गाँव में अपनी खेती-बाड़ी सम्भालने लगा। उसके छोटे बेटे जयराम ने दसवीं जमात पास कर ली तो अच्छी खासी परेशानी हो गयी। उसके लिए अच्छी बड़ी नौकरी कहाँ से मिल जाती ? और पढ़ा-लिखा आदमी बैलों की जोड़ी के पीछे, हल की मूठ थामे टट-टट करता क्या चलता ?

लड़ाई का ज़माना था। गाँव-गाँव इश्तहार लगे थे, 'नौजवानों फ़ौज में भरती होकर इज्जत की ज़िन्दगी बनाओ !·······खाना-पीना और वर्दी मुफ्त। चालीस-पचास माहवार तनखाह।' इश्तहार बड़े आकर्षक थे। बड़ी-बड़ी तस्वीरों में नौजवान लड़के चुस्त वर्दियां पहने टैंकों और मोटर साइकिलों पर सवार दिखाई देते। जयराम भी भरती हो जाने की बात करने लगता। लड़के के लाम पर चले जाने के ख्याल से चेतराम का कलेजा कांप उठता। आखिर वह बेटे को बम्बई ले गया। पुराने मालिकों के आगे हाथ जोड़े और बेटे को जानी-पहचानी जगह में रखवा दिया। काम दरबानी और मुनीमी की मिली-जुली नौकरी का था अर्थात् गेट-क्लर्की की नौकरी। तनखाह चालीस माहवार ही थी।

जयराम काम नहीं जानता था परन्तु अपने बाप के नाते विश्वास और भरोसे का आदमी था। सेठ जी ने का कहा—"आदमी मूर्ख हो तो हर्ज नहीं, पर धोखा न दे।" सेठ जी ने सान्त्वना भी दी—"....लड़का ईमानदारी से काम करेगा तो हम क्या ख्याल नहीं करेंगे ?...."

रहने के लिये जयराम को कोठी के बड़े गोदाम के हाते में फाटक के साथ की कोठरी मिल गयी थी। फाटक की दूसरी ओर गोरखा चौकीदार रहता था।

जीतूमल-खेमचन्द अब ज़िन्दा नहीं थे। बल्कि एक पीढ़ी और बीच में गुजर चुकी थी। उनके योग्य उत्तराधिकारियों ने कोठी की साख को बढ़ाया ही था। चार-पांच हजार माहवार की आमदनी तो फर्म की साख पर चलने वाली हुँडियों के कमीशन से हो जाती थी। फर्म का मुख्य काम लोहे का था। युद्ध के समय लोहा सोना बन गया था। उस समय के कोठी के मालिक सेठ रतनलाल ने इस सोने का पूरा मूल्य उगाहने में कभी प्रमाद नहीं किया।

सरकार ने लोहे की खरीद और बिक्री के मूल्यों पर नियंत्रण रखने के लिये कंट्रोल लगा दिये थे। व्यापारी आह भर कर कहते—"ये क्या जुल्म है! खरा दाम देकर माल नहीं खरीद सकते और सरकारी रुक्के के बिना घर का माल बेच नहीं सकते...."

व्यापार के छिपे दांव-पेचों से अपरिचित चतुर सरकारी अफ़सर माल के मूल्य और मुनाफे पर नियंत्रण रखने के लिये जो भी कानून बनाते, व्यापारी उसी से लाभ उठाने का ढंग निकाल लेते। सीधे व्यापार में रह ही क्या गया था ? मुनाफे का रुपये में से दस-बारह आने तो सरकार करों में छीन लेती थी। इसलिये ज्यों-ज्यों कण्ट्रोल और कर बढ़ते गये, व्यापार कंद के पौदों की तरह होता गया; जिनके पत्ते धरती के ऊपर तो कम ही दिखायी देते हैं, परन्तु धरती के भीतर जड़ें खूब फैलती हैं और फल भी धरती के भीतर ही लगते हैं।

कपड़े पर कंट्रोल लगा तो बाजार से कपड़ा ग़ायब हो गया। खासकर; भले आदमियों के पहनने लायक कपड़ा। कंट्रोल का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि देहातों के पहनने लायक कपड़ा शहरों में, और शहरों के लायक कपड़ा देहातों में बिक्री के लिये पहुँचने लगा। राशन कार्ड लेकर तीन महीने में एक

बार कुछ गज मार्कीन के लिये कौन दुकानों के आगे लाइनों में खड़ा रहता ? खान्दानी और भले आदमियों को ब्याह-शादी और तीज-त्यौहार के काम भी तो निबाहने थे। ऐसी हालत में बारह आने गज का कपड़ा तीन, साढ़े-तीन रुपये में भी मिल जाता तो लोग एहसान मानकर खरीद लेते। जो लोग दोनों हाथों से रुपया बटोर रहे थे, उन्हें जरूरत की चीज़ के दाम देते अखरता भी न था, चीज़ मिले तो ? मलमल और लंक्लाट के दस-दस के थान थोक में सत्तर और अस्सी के भाव लोग हाथ फैलाकर ले जाते थे।

हुँडी की तारीख से परेशान एक व्यापारी ने रतनलाल को पापलेन के ढाई सौ थान चालीस के भाव दे दिये थे। रतनलाल रुपये पर छः आने का यह मुनाफ़ा कैसे छोड़ देते ? लोहा तो सोमित मात्रा में ही खरीदा और बेचा जा सकता था। बेकार पड़ी पूँजी छाती का पत्थर हो रही थी। उनके लोहे के प्रकट व्यापार के नीचे महीन कपड़े का ब्लैक भी चलने लगा। देहातों में आदमी भेजकर माल मंगवा लेते। कुछ थोक में और कुछ खास जरूरतमंदों को दो दो, चार-चार थान खुर्द के भाव भी निकालते रहते। माल प्रायः लोहे के गोदामों में पड़ा रहता। दाम पेशगी या बयाना आ जाने पर जयराम माल निकाल लाता। ग्राहक निश्चित समय पर माल ले जाते और शेष भुगतान कर जाते। कभी थान ज़्यादा होने पर माल लोहा लादने के ट्रक में भेज दिया जाता।

दो ग्राहकों के यहां से आठ और दस थान का बयाना आया था। शाम सात-आठ बजे माल ले जाने की बात थी। एक तो भुगतान कर अपने थान ले गया पर दूसरा आदमी आया नहीं। जयराम माल के दाम छः सौ रु० सेठ जी को सोंपने गया तो उन्हें खबर दी कि दूसरा ग्राहक माल लेने नहीं आया। पापलेन के आठ थान उसकी कोठरी में रखे हैं। जयराम अपनी बंडी के भीतर की जेबों में ऐसे नोट लेकर सेठ जी को देने या सेठ जी का भेजा रुपया दूसरे व्यापारियों को देने जाता तो बहुत चौकन्ना रहता। जानता था कि बम्बई बहुत खतरनाक जगह है। जरा गफलत हुई कि जेब कटी। यह भी सोचता कि उसकी अपनी कीमत तो चालीस ही है पर उसकी जिम्मेवारी कितनी बड़ी है। कभी-कभी तो उसे आठ-आठ, दस-दस हजार के नोट सेठ जी तक पहुँचाने पड़ते। कपड़े के काम का रुपया लोहे की कोठी पर नहीं लाता था। सेठ जी

को घर पर ही पहुँचाना होता था। याद करके कि पिछले नौ महीने में वह ढाई लाख के करीब सेठ जी के यहां पहुँचा चुका है, उसे बहुत गौरव अनुभव होता। पूंजी लालाजी की थी, पर काम असल में जयराम ही कर रहा था। उसे सब मालूम हो गया था कि माल कहां से, कैसे आता है और गाहक कौन लोग हैं?

सेठ जी ने कहा—"घबड़ाने की कोई बात नहीं पुराना गाहक है। बयाना उसके यहां से आया हुआ है। बेर-सबेर हो ही जाती है। चाहे अभी घंटे दो घंटे में आ जाय या सुबह ही आकर ले जाये रहने दो। माल बार-बार उठाने धरने में झगड़ा ही होता है।"

जीतूमल-खेमचन्द की कोठी का काम बहुत सुथरा था। हजारों टन नये और पुराने लोहे का व्यापार और लेवा-बेची उनके यहां होती रहती थी परन्तु कोठी की गद्दी पर बिछी बगुले के पंख जैसी सफेद चादरों और बहियों पर कोई दाग़-धब्बा या मैल नहीं दिखायी दे सकता था। वही बात हिसाब-किताब के बारे में थी। कंट्रोल के ज़माने में इंस्पेक्टरों के आकर जाँच-पड़ताल करने की आशंका बनी ही रहती थी। सेठ जी इसमें दोनों ओर की सुविधा का ख़याल रखकर उसकी भी व्यवस्था किये रहते थे। पर होनी भी तो कोई चीज़ है ही। उसी रात, बल्कि अगले दिन सुबह तीन बजे ही इन्सपेक्टर साहब ने जांच-पड़ताल के लिये कोठी के गोदाम में छापा मारा। पहले भी इन्सपेक्टर साहब जब-तब आते रहते थे। जयराम उन्हें पहचानता भी था। ज़ाब्ते की सरसरी-सी कार्रवाई हो जाती थी। यह कोई नये ही इंस्पेक्टर थे। जयराम ने अनुमान किया स्पेशल पुलिस के इंस्पेक्टर होंगे। कुछ घबराहट भी हुई, जैसे नये आदमी से होती है, परन्तु गोदाम में तो सब हिसाब चौकस था।

गोदाम के माल और रजिस्टर में कोई त्रुटि न पाकर मानो इंस्पेक्टर साहब को असफलता-सी अनुभव हुई। जाते-जाते उन्होंने फाटक के दोनों ओर चौकीदार और गेट क्लर्क की कोठरी में भी नज़र डाल लेनी चाही। जयराम की कोठरी में आठ थान पापलेन देखकर उन्होंने पूछा—"यह किसका माल है?"

जयराम चुप रह गया। प्रश्न दोहराया जाने पर उत्तर दे दिया—"मालिक बतायेंगे।"

इंस्पेक्टर साहब ने सेठ जी को बुला लाने के लिये गोरखा चौकीदार के साथ एक कान्स्टेबल को भेज दिया। वे लोग एक घण्टे के बाद लौट आये और बताया कि सेठ जी पूना गये हुए हैं। सेठ जी के घर का नौकर मूला भी उनके साथ आया था। उसने जयराम को आश्वासन दिया कि सेठानी जी ने कहा है कि वे तो यह सब कुछ समझती नहीं। सेठ जी सुबह आ जायंगे तो उन से हाल कह देंगी। जो मुनासिब होगा कार्रवाई करेंगे।

पुलिस ने दो गवाहों के सामने माल क़ब्ज़े में ले लिया और जयराम को साथ हिरासत में ले गये।

जयराम प्रिंसेस स्ट्रीट के थाने की हवालात में तीन घण्टे तक बैठा कांपता रहा। वह जानता था कि सेठ जी के पूना जाने की बात झूठ है। सोच रहा था कि क्या सेठ जी मुसीबत उसी के गले डालकर खुद निकल जायेंगे? सच-सच बताकर अपना गला क्यों न छुड़ा ले? प्रमाण में सेठ जी के गोदामों का पता बता दे। परन्तु सेठ जी का नमक खाया था; स्वयं उसने ही नहीं, उसके बाप ने भी। मालिक पर भरोसा किये बैठा रहा। भरोसा तो असल में भगवान पर ही कर वह अपना धर्म निबाह रहा था।

दोपहर एक बजे के क़रीब बड़े मुनीम जी, काला कोट पहने एक वकील साहब के साथ थाने में आये। उनके साथ मोटर में अदालत का चपरासी भी था। अदालत ने जयराम को पांच हज़ार की जमानत और पांच हज़ार के मुचलके पर छोड़ देने का हुक्म दे दिया था।

जयराम को समझाया गया कि तसल्ली रखे। जरूरत होगी तो सेठ जी उसकी खातिर दस-बीस हज़ार खर्च करने को तैयार हैं। सेठ जी अपना धर्म निबाहेंगे, वह अपना निबाहे।

चिट्ठी लिखकर जयराम के पिता चेतराम को भी बुला लिया गया और समझाया गया कि जो होना है, सो तो भगवान की इच्छा से होगा। मुकद्दमा हाईकोर्ट तक लड़ा जायगा। भगवान न करें अगर छः महीने-साल की जेल हो भी गयी, तो क्या है! कोई चोरी तो की नहीं है। यह तो सरकारी जुलुम है कि व्यापारी व्यापार न कर सके। तुम्हारी पगार मिलती रहेगी, बल्कि चालीस के बजाय पचास माहवार। चेतराम जब चाहे आकर रुपया ले जाय।

चाहो तो छः मास के पेशगी ले लो। शहर-ग्राम में इस बात की चर्चा करने की भी जरूरत क्या है। लड़का बम्बई में नौकरी कर रहा है।

अदालत से जयराम को बरस भर जेल की सजा हो गयी थी। सजा सेशन और हाईकोर्ट से भी बहाल रही। चेतराम पेशगी तीन सौ रुपये और आने-जाने का किराया लेकर आँसू पोंछता हुआ गाँव लौट गया। मुनीम जी ने उससे साढ़े तीन सौ रुपये की रसीद टिकट लगाकर लिखवा ली कि एक साधू को बदरीधाम की यात्रा के लिये दिये गये और रुपया धर्मखाते से दे दिया गया।

जयराम भी आँखों में आँसू लिये और लज्जा से सिर झुकाये जेल चला गया, पर मन में आशा थी कि अपने धर्म की खातिर बरस भर नर्क में बिताने के बाद उसके लिये उज्ज्वल भविष्य के स्वर्ग का मार्ग खुल जायगा।

जेल में जयराम को तरह-तरह के लोगों से परिचय हुआ और बातचीत हुई। आत्माभिमान के कारण उसने कइयों को अपने निरपराध होने की सच्ची बात भी बता दी। कुछ ने उसे मूर्ख कह कर मज़ाक किया। कुछ ने आशा दिलायी कि तूने अपने सेठ के लिये इतना किया है तो सेठ भी तुझे निहाल कर देगा। जेल में भलमनसाहत से रहने के कारण जयराम को सजा में लगभग दो मास की छूट मिल गयी।

जयराम दस मास बाद बायकुला जेल से छूटा तो सीधा जीतूमल खेमचन्द की कोठी पर पहुँचा। मुनीम जी ने चश्मे के शीशों के ऊपर से देखकर उसे पहचाना और चश्मा उतार कर कुछ सोचकर बोले—"जरा सांस लो, सेठ जी से बताकर आयें!"

मुनीम जी सेठ रतनलाल के कमरे में जाकर समझ आये और उन्होंने जयराम से बात की—"छः महीने की पगार तुम्हारे पिता पेशगी ले गये थे। चार मास के दो सौ बनते हैं। सौ रुपया सेठ जी तुम्हें और दे रहे हैं। तुम तीन सौ की रसीद ऐसे बना दो कि संस्कृत पढ़ने के लिये दान में रकम पायी।....समझे!"

जयराम को इस बात में कोई आपत्ति नहीं हुई। जानता था कारोबार में बहुत से काम ऐसे ही चलते हैं। रसीद बनाकर उसने मुनीम जी को दिखाई

और रोकड़ से जाकर रुपया ले आया और मुनीम जी के सामने प्रतीक्षा में बैठा रहा।

मुनीम जी ने "चश्मे के शीशों के ऊपर से जयराम की ओर झांक कर पूछा—"अब क्यों बैठे हो ?

कुछ विस्मय से जयराम ने उत्तर में प्रश्न किया—"हमारी नौकरी का क्या तय हुआ ?"

मुनीम जी ने चश्मा उतार कर समझाया—"नौकरी तुम जहां चाहो ढूँढ़ लो। तुम जेल से छूटे आदमी हो। इस फर्म की इतनी बड़ी साख और नाम है। शायद पुलिस तुम्हारी निगरानी करे। तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नहीं है।....समझे!"

जयराम हक्का-बक्का रह गया। अदालत और जेल के चक्कर लगा लेने से वह कुछ साहसी और मुंहफट भी हो गया था। मुनीम जी को सम्बोधन कर बोला—"हम सेठ जी से बात करेंगे।"

"सेठ जी से क्या बात करोगे ?"—मुनीम जी ने उत्तर दिया—"जो सेठ जी ने हमसे कहा सो कह दिया।"

जयराम के माथे में भभक उठी ज्वाला एड़ी से पृथ्वी में निकल गयी। लपक कर सेठ जी के कमरे की ओर गया और दरवाज़ा धकेल कर भीतर जा पुकार उठा—"यह क्या जुलुम हो रहा है साहब ?"

बहुत शान्ति से सेठ जी ने उत्तर दिया—"जुलुम क्या हो रहा है ? तुम्हें एक सौ रुपया फालतू दे देने के लिए कह तो दिया।"

जयराम को और भी गुस्सा आ गया, बोला—"सौ रुपये में किसी की ज़िन्दगी और इज्जत मोल ले लेंगे आप ? हम आपकी खातिर निरपराध जेल गये ? आप ही ने तो हमें दाग लगाया।"

इस बात से सेठ जी को कुछ क्रोध आ गया बोले—"बिगड़ किस बात पर रहे हो ? जेल जाने की तनखाह तुम्हें दी है, इनाम दिया है। सिपाही तनखाह पाता है तो लड़ाई में जाकर मालिक के लिए छाती पर गोली खाता है।"

इस बार जयराम गुस्से से पागल ही हो गया। चिल्लाकर बोला—"सौ रुपये इनाम और चालीस रुपल्ली तनखाह का एहसान दिखा रहे हो ? मैंने खतरा झेल-झेल कर ढाई-तीन लाख ला-ला कर दिया सो भूल गये ?"

सेठ जी को भी अधिक क्रोध आया। उन्होंने डाँटा—"हमारा नमक खाकर नमक हरामी करता है, नमकहराम ! निकल जा यहां से ?"

सेठ जी के कमरे में चीख-पुकार सुनकर मुनीम लोग और चपरासी दौड़ पड़े। उन लोगों ने जयराम को कंधों और बाहों से पकड़ लिया कि कहीं सेठ जी की बेइज्ज़ती न कर बैठे। परन्तु जयराम इतने आदमियों के आ जाने पर भी डरा नहीं। और भी गुस्से में बोला—"अबे उल्टी गाली देता है ! नमक हराम मैं हूँ कि तू ? नमक मैं बना रहा था कि तू ? नीच, कृतघ्न ! ले यह और खा ले !" उसने तीन सौ रुपये के नोट भी सेठ जी की ओर फेंक दिये।

चपरासियों और मुनीमों ने जयराम को गर्दनिया देकर बाहर निकाल दिया। क्रोध में जलती आंखों से उनकी ओर देखकर वह कहता गया—"बहुत नमक हलाल बन रहे हो, कल तुम्हारे साथ भी यही होगा।"

दफ्तर के लोगों ने दुखी होकर कहा—"जेल हो आया है न ? तभी तो आंखों का सील मर गया........।"

३
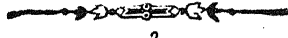
## पतिव्रता

बहुत ही छोटी आयु में, जब सुमति अभी तीसरी-चौथी कक्षा में पढ़ती थी, उसे अपने नाम की जिम्मेवारी और गर्व अनुभव होने लग गया था। पढ़ने-लिखने में वह तेज़ समझी जाती थी। तभी उसकी महत्वाकांक्षा बन गयी थी कि पाठशाला में पढ़ाने वाली दीदी की तरह, खूब पढ़-लिख कर पाठशाला में पढ़ाने का काम किया करेगी। उसका भी खूब आदर होगा।

सुमति के पिता अच्छी स्थिति के ठेकेदार थे। ढंग आधुनिक और विचार भी उदार। मां भी पढ़ी-लिखी थीं, परन्तु स्कूल की मास्टरनियों को कुछ ऐसा-वैसा ही समझती थीं। वे जिस मास्टरनी को चाहती नौकर रख सकती थीं। एक दिन सुमति के मुख से यह सुनकर कि लड़की पढ़-लिखकर मास्टरनी बनना चाहती है, उन्हों ने लाड़ में भवें चढ़ाकर डाँट दिया—"हट पागल! हाय, तू क्यों मास्टरनी बनेगी? राजा-रईस के घर मेरी लड़की का ब्याह होगा। तू अपने घर-परिवार में राज करेगी....."

सुमति ने मां के सामने तो मचलकर ये ही कहा कि वह खूब पढ़ेगी, खूब पढ़ेगी, ब्याह नहीं करेगी, परन्तु तब से कुछ और भी सोचने लगी। आठवीं कक्षा में पहुँची तो भविष्य के सम्बन्ध में उसकी कल्पना बदल गई। अनुभव किया कि स्कूल में मास्टरनी का चाहे जितना रोब और दबदबा हो, स्कूल में

चाहे जिस लड़की को चाँटा मार ले या डाँट-डपट ले, स्कूल के बाहर बड़े लोगों की दुनिया में मास्टरनी का स्थान बहुत ऊँचा नहीं माना जाता। उसने नल-दमयंती, सावित्री-सत्यवान, सती सीता और मंदालसा की कहानियाँ पढ़ी थीं। कभी-कभी सोचने लगती कि सती और पतिव्रता का आदर क्या कम होता है? इतिहास में जैसे महाराणा प्रताप और राणा सांगा का नाम है, जौहर करने वाली पद्मिनी, सीता और सावित्री का नाम क्या वैसा ही नहीं है? गृहस्थ जीवन की अन्य बातों का विशेष परिचय सुमति को उस समय नहीं था, परन्तु पतिव्रत धर्म का अर्थ मालूम हो चुका था। सुमति अपने भावी पति के प्रति चरम निष्ठा और पतिव्रत धर्म निबाहने के स्वप्न देखने लगी। सोचती, किसी स्त्री के पूर्ण पतिव्रता और महान् सती होने का प्रमाण तो पति के मर जाने पर और स्त्री के चितारूढ़ होकर सती हो जाने से ही मिल सकता है।

सुमति तेरह-चौदह वर्ष की आयु में कल्पना करने लगती कि वह विधवा हो गयी है। बड़े भारी समारोह में वह अपने मृत पति के शव के साथ श्वेत वस्त्र पहने चिता पर बैठी है। चिता से अग्नि की लपटें उठ रही हैं। उसकी श्वेत साड़ी के साथ उस का शरीर भी जल रहा है, परन्तु उसके मुख से कोई 'आह' या 'उफ' नहीं निकल रही। वह मूर्त्तिवत् निश्चल बैठी भस्म हो जाती है। उसके बाद उसकी चिता के स्थान पर श्वेत पत्थर का बड़ा भारी स्मारक बन जायगा और स्त्री-पुरुष 'सती सुमति की जय' पुकारकर उसके स्मारक की पूजा करेंगे। स्कूल की लड़कियों की पुस्तक में 'सती सुमति' की कहानी छप जायगी। उस समय अपनी कक्षा की या दूसरी किसी लड़की के सम्बन्ध में लड़कों के साथ उच्छृंखलता या शरारत की कोई बात सुमति सुन पाती, तो ऐसी लड़कियों के प्रति उसे बहुत घृणा अनुभव होती।

सुमति की योग्यता के कारण उसके माता-पिता को अपनी पुत्री के कक्षा में प्रथम आने का गर्व अनुभव होता था। इसलिए उसके बीस वर्ष की आयु में बी० ए० पास कर लेने तक उन्होंने उस के विवाह के सम्बन्ध में कोई जल्दी आवश्यक नहीं समझी। यह भी तसल्ली थी कि ऐसी लड़कियाँ हैं ही कितनी। ऐसी योग्य लड़की के लिए वर पा लेना कठिन क्यों होगा। लड़की की उन्नति के मार्ग में रुकावट क्यों डाली जाये।

एम० ए० में पढ़ते समय सुमति को सती होने की बाल-सुलभ कल्पनाएँ भूल चुकी थीं। अब सुमति की भावना और कल्पना में विवाह का अर्थ सुन्दर-सुन्दर कीमती कपड़े और जेवर पहन कर भय और लज्जा से सिकुड़ते हुए पिता-द्वारा किसी लड़के के हाथ सौंप दिया जाना नहीं रह गया था। अब वह विवाह को दो प्राणियों के अगाध प्रेम के आधार पर जीवन का सहयोग समझने लगी थी। ऐसे प्रेम की कल्पना ने उसके मन में पुलक और माधुर्य की स्फुरन भी कई बार पैदा की। ऐसे प्रेम के योग्य पात्र भी उसे जीवन के पथ पर दूर-दूर चलते दिखायी दिये, परन्तु अंजली में अपना प्रेम लेकर अर्पण करने या उनके प्रेम की भीख माँगने वह कैसे चली जाती। आत्म-सम्मान की धारणा से वह संयत बनी रही। धैर्य से प्रतीक्षा के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। अब सुमति को स्पष्ट दिखायी देने लगा कि उसके योग्य सम्मानित शासक वर्ग का अथवा विद्वान और धनवान वर तो जीवन के पथ पर जब आयगा, तब आयगा; फिलहाल उसे एम० ए० की परीक्षा सम्मान पूर्वक पास करके लड़कियों के कालिज की प्रोफेसर का पद पाने योग्य तो हो ही जाना चाहिए।

सुमति को लड़कियों के कालिज में प्रोफेसरी करते छः वर्ष बीत चुके थे। आयु बढ़ने के साथ जीवन के सागर में प्रेम का दुर्दम ज्वार आने की और उस ज्वार में जीवन की नैया किसी माँझी के हाथ समर्पण कर देने की उमंग बैठती जा रही थी। जीवन के सागर में प्रणय का द्वीप खोजने के लिए दौड़ने वाली कल्पना की नाव के पाल में भरी उमंगों की वायु एकान्त में छूटे दीर्घ निश्वासों से निकल चुकी थी। स्वावलम्बी बन कर अपना जीवन सम्मान-सहित निर्वाह कर सकने की प्रकट सफलता के आवरण में, स्त्री-जीवन की असफलता के अपमान की चुभन ने, एक शैथिल्य सिर पर लाद दिया था। इस बोझ के कारण घर-बार और संतान का बोझ सम्भाले अपनी पुरानी सहेलियों और सहपाठिनों के सामने सिर ऊँचा न हो पाता। माता-पिता के सुमति को लड़की ही पुकारते रहने पर भी समाज और लोग-बाग की आँखों में वह औरत हो गयी थी। सुमति के अब भी अपने कौमार्य की पवित्रता के ऐलान में दो चोटियाँ करने पर लोगों के होठों पर मुस्कान आ जाती। इस विद्रूप से खिन्न होकर सुमति ने अपनी दोनों चोटियों को जूड़े के रूप में लपेट लेना शुरू कर दिया।

सुमति से भी अधिक निराश हो गये थे उसके माता-पिता। अपनी लड़की के लिये कम उम्र में ही वर ढूँढ़ कर उस का विवाह न कर देने के लिए वे अपनी बेटी और समाज के सामने, अपने को अपराध अनुभव कर रहे थे। अब उन्हें दिखायी दे रहा था कि योग्य लड़कियों की अपेक्षा योग्य लड़कों की ही कमी कहीं अधिक है। ऐसी घटाटोप निराशा में सुमति की मां ने अपने भाई के सुझाव के सम्बन्ध में कई दिन तक पति से परामर्श करने के बाद बहुत सहमते-सकुचाते सुमति से बात की कि तेरह बड़ी-बड़ी मिलों के मालिक, देश-प्रसिद्ध और मान्य सेठजी ने अपनी दूसरी पत्नी की मृत्यु के चार वर्ष के बाद उस से विवाह करने की इच्छा प्रकट की है। सेठजी की आयु अड़तालीस के लगभग है, परन्तु असली चीज़ तो स्वास्थ्य होता है........। सेठजी के दो छोटे-छोटे बच्चे दूसरी पत्नी से थे और बचपन के विवाह की देहाती अपढ़ पत्नी भी थी, परन्तु उनके लिये पृथक घर थे। मानो सेठ जी के कई संसार थे। साधनों का अभाव न होने पर उनके अनेक संसार स्वतंत्र रूप से निर्विघ्न चल सकते थे, जैसे एक सूर्य के चारों ओर अनेक भूगोल घूमते हैं।

मां की बात से सुमति को ऐसा धक्का लगा कि सिर चकराकर आँखें मुंद गयीं। अपने-आप को सम्भाल न सकने के कारण वह दीवार का सहारा लेकर अपने कमरे में जा खाट पर लेट गयी। आँखों से आँसू बह गये।........कहां कठिनाइयों और आँधियों की परवाह न कर प्रेम के ज्वार पर जीवन के पारावार में धंस जाने के अरमान और कहां करोड़ों रुपये के पिंजरे में आत्म-समर्पण की विवशता!

अपनी बात से सुमति को लगी चोट का प्रभाव देखकर उसकी मां की आँखों में भी आँसू आ गये। बेटी को दूरदर्शिता की सीख देने का भी साहस उन्हें न हुआ। चुप ही रह गयीं परन्तु, लगभग तीसवें वर्ष में कदम रख चुकी सुमति भी तो अब ऐसी बच्चा नहीं रही थी कि प्राण बचा सकने वाली कड़वी दवाई की बोतल को पटककर तोड़ देती। तीन दिन बाद जब मां ने सुमति को बिना किसी कारण के तीन बार चुपचाप अपने पास आकर बैठ जाते देखा, तो फिर सहमते-सहमते उसी बात का संकेत मां ने किया।

"मुझे क्या मालूम?....मैं क्या तुमसे ज्यादा समझती हूँ?"—सुमति ने

कह डाला और फिर जाकर अपने पलंग पर लेटकर आँसू पोंछने लगी। मालूम नहीं कि तेरह-चौदह वर्ष की सती होने की बाल-सुलभ कल्पना उसके मन में फिर जागी या नहीं, परन्तु ऐसा ज़रूर अनुभव हुआ कि मँझधार में असहाय बहते-बहते, थककर दम टूटते समय किसी डरावनी परन्तु ठोस चट्टान पर हाथ पड़ गया हो। ऐसे समय चट्टान का सौंदर्य तो नहीं देखा जाता।

सुमति सैकड़ों लोगों के मुंह बिचकाने की और सैकड़ों के आश्चर्य प्रकट करने की क्या परवाह करती? उसे अपना अटल भाग्य सामने दिखायी दे रहा था। भाग्य से कतराने का अवसर कहाँ था और सांसारिक दृष्टि से इससे बड़ा सौभाग्य भी क्या हो सकता था? सुमति कालिज की नौकरी छोड़ कर करोड़पति सेठजी की तीसरी बहू बनकर चली गयी। जिस भाग्य ने सुमति की प्रेम और प्रणय की कल्पनाओं को चकनाचूर कर दिया, उसी भाग्य ने उसे करोड़ों की सम्पत्ति और वैभव की मालकिन भी बना दिया। बम्बई में सेठजी के बँगले के एक-एक कमरे की सम्पत्ति के मूल्य का अनुमान कर उसे आतंक-सा अनुभव होता। तीन-तीन, चार-चार मोटरें बंगले के सामने खड़ी रहतीं। प्रेम, जो एक दिन उमंग और कल्पना की वस्तु थी, अब सुमति का कर्त्तव्य और धर्म बन गया। यह धर्म और कर्त्तव्य उसे निबाहना ही था और भाग्य-द्वारा दी गयी करोड़ों की सम्पत्ति सम्भालने में उसे पति को सहयोग देना था।

सुमति के मस्तिष्क में बसी कल्पना, कला, कविता का और प्रेम-प्रणय के स्वप्नों का स्थान ले लिया पति की सेवा के कर्त्तव्य की भावना और पतिव्रत धर्म की दृढ़ आस्था ने। आकर्षण की पुलक और स्फूर्ति के संतोष का प्रश्न ही न था और न प्रेम और प्रणय के आदान-प्रदान की कोई बात। सेठजी सुमति के लिये कामदेव के प्रतीक थे। उनके शरीर या व्यवहार में किसी बात को अरोचक और अनाकर्षक समझने का प्रश्न ही नहीं था।

सेठजी विश्वास से धर्मपरायण थे। उनके विस्तृत व्यवसाय के धर्मादय के भाग से बीसियों धर्मार्थ संस्थाएँ चलती थीं। अपने गृहस्थ जीवन में भी वे धर्म के प्रति पूर्ण निष्ठा चाहते थे। महलनुमा कोठी के जनाने कमरों में धार्मिक सूक्तियाँ और सुभाषित लिखे हुए थे—

भरता ही परमोदेवः भरता ही परमः सखा।

और तुलसीदास जी की चौपाइयाँ :

एक धर्म एक व्रत नेमा । काय वचन मन पतिपद प्रेमा ॥

वृद्ध रोगबस जड़ धन हीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहू पति का क्या अपमाना । नारी पाव यमपुर दुख नाना ॥

सेठजी के व्यवसायिक जीवन में सुमति के लिये सहयोग दे पाने का अवसर नहीं था । सेठजी के व्यवसाय से वेतन पाने वाले हजारों व्यक्ति उनके व्यवसाय की पेचीदगियों को सम्भालते थे । उस व्यवसाय में रुपया नदी की धाराओं के परिमाण में आता और जाता था । रुपये की इन संख्याओं के सुनने मात्र से सुमति का मस्तिष्क चकरा जा सकता था । उस व्यवसाय की चिन्ता करना सुमति के लिये वैसे ही व्यर्थ था, जैसे भगवान की बनायी व्यवस्था में मनुष्य का दखल देना । सुमति केवल गृहस्थी की व्यवस्था और खर्च को ही सम्भाल सकती थी और इतना वह खूब सतर्कता से कर रही थी ।

सब से बड़ा काम सुमति के लिये था महाप्राण सेठजी के स्वास्थ्य की चिंता । इतना बड़ा संसार सम्भालने की व्यस्तता में वे अपने शरीर के प्रति ही निरपेक्ष थे । सुमति ने सेठजी के शरीर की नित्य बादामरोगन से मालिश की जाने की व्यवस्था की । जिस ऋतु में जो फल दुष्प्राप्य होता, उसी फल के रस का एक गिलास वह सेठजी को अपने हाथों अवश्य पिलाती । फल के रस के गिलास पर जितना ही अधिक मूल्य लगता, उतना ही अधिक संतोष सुमति को होता । उसने सेठजी के विकट पायरिया के इलाज के लिये एक आलमारी दवाइयों से भर दी । सेठजी को तम्बाकू खाने की आदत थी । तम्बाकू खाने वाले व्यक्ति के मुंह से प्रायः एक प्रकार की हबक आती है । सुमति ने लखनऊ, मैनपुरी और भूपाल से पचासों किस्म के सुगन्धित जर्दे और किमाम मंगाकर रखे, परन्तु सेठजी उनकी ओर उपेक्षा से सिर हिलाकर अपनी चूना-मिली सुर्ती में ही मगन रहे । पायरिया और तम्बाकू की दुर्गंधों में होड़ होती रही ।

सेठजी जिस विराट परिमाण में व्यवस्था और दान करते थे, उसी परिमाण में विनोद, विलास और आसक्ति की लहर भी उनके मन में उठती थी । प्राचीन काल में जो कुछ राजाओं के लिए उचित या क्षम्य था, वही सब कुछ सेठजी अपने लिये भी समझते थे । वे राजा हो तो थे । सामन्तकाल में भूमि के स्वामी राजा होते थे । पूँजी के युग में पूँजी के स्वामी राजा हैं ।

उनकी धार्मिक धारणा के अनुसार गृहस्थ धर्म और भोग-विलास के क्षेत्र भिन्न-भिन्न थे ।

सुमति से विवाह के प्रायः अठारह मास बाद सेठजी का मन फिल्म जगत में आयी नयी तारिका निहार में रम गया । सेठजी अनेक बार संध्या समय अनमने से दिखायी देने लगते ।

नौकरानियों ने सकुचाते-शरमाते जो बातें सुमति को सुनायीं, उन्हें सुनकर वह अपनी स्थिति के विचार से गम्भीर बनी रही । परन्तु मन भीतर-ही-भीतर कसमसा कर रह जाता । सेठजी से कुछ कह सकने का साहस नहीं था और पति को सुमार्ग पर रखने के कर्त्तव्य का भी ध्यान था । जैसे सुमति को सेठजी के व्यवहार में अनमनापन दिखायी दिया, वैसे ही उसे दिखायी दिया कि नयी खरीदी गयी कत्थई और चटक सफेद रंग की कैडलेक कार भी तीन-चार दिन से कोठी से गायब थी । यह नयी गाड़ी स्वयं सेठजी या सुमति के ही व्यवहार के लिये सुरक्षित थी ।

पाँचवें दिन गहरे हरे और उजले सफेद रंग की एक और कैडलेक गाड़ी आ गयी । सुमति के लिए कौतूहल दमन करना कठिन हो गया । पूछने पर पता चला कि निहार को सेठजी की नयी कैडलेक बहुत पसन्द थी । सेठजी ने निहार को कोठी पर बुलाया था । उसने कहला भेजा—"हमारे पास जब कैडलेक होगी तो आयेंगे ।" सेठजी ने गाड़ी उसी के यहाँ भिजवा दी ।

सुमति के मन को धक्का लगा । पचीस हज़ार की गाड़ी !·········और अपने देवता की अन्यत्र अनुरक्ति ! सुमति का मन निहार के प्रति घृणा और क्रोध से जल उठा । सेठजी के प्रति तो क्रोध आ ही नहीं सकता था । सरल स्वभाव सेठजी पर छल का फन्दा डालने वाली डाइन के प्रति ही क्रोध उचित भी था । नौकरों- नौकरानियों की मार्फत निहार के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें सुमति तक पहुँचने लगीं—असली नाम नसीरा है ।····इसकी माँ का भी बड़ा नाम था । कलकत्ते में पेशा करती थी ।····छल-छंद में बड़ी तेज है, तभी तो दो ही बरस में इतनी चमक गयी ।····बड़े-बड़े लोगों में होड़ लगी है इसके लिए ।····पैसे की बड़ी भूखी है ।····कहते हैं, कालिज में भी पढ़ी है, अंग्रेजी बोलती है···· और भी बहुत कुछ ।

सुमति सेठजी से तो कुछ कह नहीं सकती थी। परन्तु मन दुःख से बहुत घुटने लगता, तो कल्पना करती कि निहार के घर जाकर उसे फटकारे—क्या यह मनुष्यता है? चाँदी के टुकड़ों पर अपने शरीर को बेचना! दूसरे को उजाड़ना!—वह निहार की सद्‌बुद्धि को क्यों नहीं जगा सकेगी? पर सेठजी की अनुमति और आज्ञा बिना सुमति कहीं जा कैसे सकती थी? ऐसे पाप की बात उसने सोची भी नहीं थी।

एक दिन संध्या सुमति की कोठी के ऊपर के दायें भाग में सेठजी का खास व्यक्तिगत नौकर नारायण बहुत व्यग्र दिखायी दिया। सुमति के रहने के बायें भाग से दायीं ओर खुलने वाले दरवाज़े बाहर से बन्द किये जा रहे थे। नौकर-नौकरानियाँ फुसफुसाहट से बात कर रही थीं। सुमति का मन आशंका और कौतूहल से मथ गया। अपनी विश्वास की नौकरानी पारो को बुलाकर पूछे बिना रह न सकी—"ये सब क्या है री?"

पारो ने चारों ओर निगाह दौड़ा कर देखा, कोई देख-सुन तो नहीं रहा और धीमे से कह दिया—"मालकिन, बनारसी कह रहा है कि आज निहार आयेगी।"

सुमति के एड़ी से चोटी तक बिजली कौंद गयी। एक गहरी साँस छोड़ स्तब्ध रह गयी। फिर अपने पलंग पर लेट आँखें मूंदे सोचने लगी, क्या अब भी चुप ही रहूँ?····अपने पति को धोखे और विनाश से बचाना भी तो मेरा कर्त्तव्य है····आखिर मेरे पढ़ने-लिखने का फ़ायदा क्या? चोर को अपने घर में सेंध लगाते देकर भी चुप रहूँ? मन के आवेश के कारण लेटी न रह सकी, तो उठकर बैठ गयी। दाँतों से होंठ काटते हुए निश्चय किया, नहीं, आज करना ही होगा, आज ही मौका है।

संध्या समय सुमति को पता लगा कि सेठजी आ गये हैं और आकर ऊपर दायीं ओर चले गये हैं। सुमति का अनुमान था कि अब निहार आती ही होगी। परिस्थिति अनुकूल जान पड़ी। सोचा, मैं नीचे जाकर उस औरत के ऊपर जाने से पहले ही उससे बात करूँ! वह ऊपर जा ही न सके········यह मेरा धर्म है।

सुमति के कमरे की पूरब की खिड़की से सामने सड़क पर दूर तक नज़र जा सकती थी। उसने सोचा, सड़क पर जलती बिजली के प्रकाश में वह पहली

कैडलेक कार को दूर से पहचानकर नीचे उतर जायगी और देखेगी कि वह छिनाल औरत कैसे उसके स्वामी के पास जाती है।

सुमति दृढ़ निश्चय से सड़क की ओर नज़र लगाये बैठ गयी।

सुमति को पहली कैडलैक की गम्भीर परन्तु सुरीली-सी गरज सड़क से सुनायी दी। बिजली के प्रकाश में कोठी की ओर तेज़ी से फिसलती हुई गाड़ी की झलक पाते ही सुमति उठकर लिफ्ट की ओर चली। उस ओर का दरवाज़ा बाहर से बन्द था। उसने परवाह नहीं की। बायें हाथ से नीचे जाने वाले ज़ीने से उतरने लगी। दो ज़ीने उतर कर सुमति जब तक नीचे ड्योढ़ी में पहुँची, कैडलेक में आने वाली सवारी लिफ्ट के रास्ते ऊपर जा चुकी थी और गाड़ी ड्योढ़ी में जगह न रोके रहने के विचार से दूसरी ओर जा रही थी।

क्रोध और आवेश से सुमति का सिर घूम गया। अपने आपको वश में कर पाने के लिये सुमति कोठी के आगे टहलने लगी। मालूम नहीं, वह पन्द्रह मिनिट टहलती रही या बीस मिनिट। सामने से कदमों की आहट सुन उसने सिर उठाकर देखा एक जवान लड़की को। लड़की के रूप-यौवन का दिखावा और निस्संकोच व्यवहार देखकर अनुमान की आवश्यकता ही नहीं थी।

सुमति का आवेश फिर उफ़न उठा। वह निहार की ओर बढ़ आयी। दोनों एक ही साथ बोल उठीं।

"मैं तुम से बात करना चाहती हूँ।"—सुमति ने कुछ कड़े स्वर में कहा।

निहार ने उत्तर में अपने मुंह में आयी बात ही कह दी—"क्षमा कीजिए, आपका परिचय?"

"मैं मालकिन हूँ इस घर की!"—सुमति ने धमकी से उत्तर दिया।

"नमस्कार!"—निहार ने हाथ जोड़ दिये और विवशता दिखाने के लिये अपनी सुराहीदार गर्दन को लचकाते हुए सहायता के लिये अनुरोध किया—"बहुत मशकूर होऊँगी, आपकी! आप के नौकर को कष्ट तो होगा, एक टैक्सी मंगवा दीजिये। वो कैडलेक गाड़ी मुझे नहीं चाहिये।"

विस्मय से आँखें फैलाए सुमति की आँखों में निहार ने कुछ शर्मायी-सी नज़र डाली। अपनी चोली में दो उंगलियाँ खोंस एक कागज़ निकाला और

सुमति की ओर बढ़ाते हुए कातर स्वर में कहा—"यह भी सेठजी को लौटा दीजिएगा !.........ओफ़ ! किस क़दर नागवार बदबू है तम्बाकू और पायरिये की !............तोबा ! यह तो उम्र भर सोने के महलों में रहने के दामों भी बर्दाश्त नहीं !"

सुमति स्तब्ध रह गयी !..... "यह उसका अपमान था या उस पर दया थी ?....क्रोध में फटकार दे या दया के लिये कृतज्ञता प्रकट करे ?

सुमति कुछ बोल ही नहीं सकी। पाँव कांपने लगे। कुछ भी उत्तर दिये बिना वह ड्योढ़ी की राह ज़ीना चढ़ने लगी। ऊपर अपने पलंग तक पहुँची, तो निहार की बात की चोट और ज़ीना चढ़ने के श्रम से हाँफ रही थी। पलंग पर लेटकर आँखें मूंद लीं। निहार के शब्द....'नागवार बदबू....उम्र भर सोने के महलों में रहने के दामों.....' पायरिये की दवाइयों से भरी आलमारी ! उस बदबू से बच सकने के लिये मंगाए खुशबूदार तम्बाकुओं का भंडार !....फिर भी उस बदबू से बचाव नहीं।

सुमति ने कई मिनिट बाद आंखें खोलीं, तो सेठजी को लौटा देने के लिये निहार के दिये कागज़ की सुध आयी। खोलकर देखा, चेक था पचीस हजार रुपये का। याद आया, पचीस हज़ार की गाड़ी भी छोड़ गयी।....पचास हज़ार रुपये के लिये भी पन्द्रह मिनिट तक बदबू सह लेना मंजूर नहीं।....'उम्र भर सोने के महलों में रहने के दामों भी नहीं.........' वह है पैसे की भूखी नीच वेश्या ! कितनी समर्थ.........मैं हूँ सम्मानित पतिव्रता !.........

दिल डूबता-सा जान पड़ रहा था। सुमति की आँखें फिर मुंद गयीं। लग रहा था कि विवशता के पाताल-कूप में गिरी जा रही है।....

अस्पष्ट-सा कुछ सुनायी दिया, फिर सुनायी दिया। सुमति ने आँखें खोलीं। पारो उसका पाँव छूकर जगा रही थी और घबराये हुये स्वर को दबाकर कह रही थी—

"सेठजी बुला रहे हैं।"

४

# आत्म-अभियोग

अपने छोटे से नगर में महत्ता और संकीर्णता का जो विकट संघर्ष मैंने देखा है, उसका प्रकट रूप कुछ भी नहीं था। वह घटना इतनी सूक्ष्म थी कि समारोह में एकत्र दूसरे लोग कुछ जान ही नहीं पाये। जानने के कारण ही मेरा मन बोझ से इतना छटपटा रहा है। उन आदरणीय लोगों की बाबत कुछ कहा भी नहीं जा सकता।·········कम से कम अभी कुछ वर्ष तक। जब वे लोग इतिहास का अंग बन जायंगे; शायद बन ही जायें, तो दूसरी बात होगी। बात को अंत से आरम्भ की ओर न कह कर आरम्भ से अंत की ओर ही कहना ठीक होगा। दोनों पात्रों के नाम अभी नहीं बताये जा सकते इसलिये अभी 'कवियित्री' और 'नेता' इन दो उपनामों से ही संतोष करना पड़ेगा।

घटना के कारणों का आरम्भ पुराना है, यानि पूरी एक पीढ़ी पहले की बातें और वातावरण; जब विदेशी शासन के बन्धन के साथ रूढ़ि के बन्धन भी काफ़ी कड़े थे। परन्तु उस संकीर्णता में कुछ नवयुवक, राष्ट्रीय भावना से अपने आप को निछावर करने की जैसी विशालता का परिचय दे देते थे वैसी उदारता आज नवयुवकों में दिखाई नहीं देती। शायद आज परिस्थिति उसकी मांग भी नहीं करती।

जिस नेता की बात कह रहा हूँ, उस समय ऐसा ही नवयुवक था। सभी

लोग उसे प्रतिभा-सम्पन्न समझ कर विश्वास करते थे कि वह अपना भविष्य सफल और उज्वल बना सकेगा, परन्तु उसने राष्ट्रीय भावना की पुकार सुन कर सब कुछ-अपना तात्कालिक सुख, सफलता, भविष्य बल्कि जीवन ही निछावर कर दिया। हम शेष लोगों में उतना साहस नहीं था इसलिये हमने उसका आदर करके ही संतोष पाया। नेता का आदर करने वाले इन लोगों में यह 'कवियित्री' भी थीं। कवियित्री उस समय स्वयं भी प्रस्फुटित होते यौवन के उद्वेग में थीं, जब कि निस्वार्थ और त्याग भी सीमाओं को तोड़कर ही बहना चाहते हैं। कवियित्री उस समय भी कवि थीं। उस समय उनकी भावनाएं कविता की वाणी का माध्यम पाकर जनश्रुत नहीं हो पायी थीं और प्रतिक्रिया में, प्रसिद्धि ने उन्हें आदर से ऊँचा नहीं उठा दिया था। फिर भी हृदय तो वही था, उद्वेग और भावना की अपरिमित शक्ति से भरा।

जैसे पतंगे को जलती दीप-शिखा की ओर जाने के लिये कोई नहीं कहता और उस ओर जाने से उसे कोई रोक भी नहीं सकता वैसे ही कवियित्री नेता के आदर्श से आकर्षित होकर उसके पथ का अनुसरण करने के लिए व्याकुल थीं; कर्त्तव्य के पथ पर, मृत्यु की खाई में भी उतने ही उत्साह से कूद जाने के लिये। पर हुआ यह कि नेता आगे निकल गया और कवियित्री साथ देने के लिये, उसका हाथ पकड़ने के लिये बांह फैलाती-फैलाती पिछड़ गयी, जरा पिछड़ गयी।

नेता राष्ट्रीय मुक्ति के लिये अपनी जान पर खेल कर विदेशी शासन पर चोट करने के प्रयत्न में गिरफ्तार हो गया। सभी जानते थे कि इस साहस का मूल्य नेता को फांसी या आजन्म कारावास के दण्ड के रूप में देना होगा। इस घटना से हम सभी को चोट लगी, परन्तु विदेशी शासन के आतंक में और उतना साहस होने पर मौन आदर और सहानुभूति के सिवा और कर ही क्या सकते थे। कवियित्री के लिये यह आघात केवल राष्ट्रीय भावना की पीड़ा तक ही सीमित नहीं रहा। शायद व्यक्तिगत कुछ था ही नहीं। शायद सभी कुछ व्यक्तिगत भी था।

विदेशी शासक के न्यायालय से नेता को आजन्म कारावास के दण्ड की आज्ञा हो चुकी थी। उसे कालेपानी या द्वीपान्तर-वास के लिये भेजे जाने की भी तारीख निश्चित हो चुकी थी। जेल के कायदे से उसे अवसर दिया

गया था कि पत्र लिख कर अपने सम्बन्धियों को सूचना दे दे। किसी से मिलना चाहता हो तो अमुक तारीख से पहले बुला सकता है। नेता ने अपनी प्रौढ़ा मां और भाई को पत्र लिखकर अपने कालेपानी भेजे जाने की तारीख की सूचना दे दी थी परन्तु इतनी दूर किसी के मिलने आ सकने की आशा नहीं की थी। वह अपने सम्बन्धियों की आर्थिक बेबसी और अपने मित्रों की राजनैतिक बेबसी जानता था। आशा न कर सकने का दुख भी नहीं था। किसी प्रतिकार और पुरस्कार की आशा से उसने यह कदम नहीं उठाया था। वह अपने आपको कर्त्तव्य की वेदी पर उत्सर्ग कर चुका था। प्राण रहते भी वह अपने आपको दूसरों के लिये जीवित नहीं समझ रहा था।

परन्तु जेल की कोठरी में नेता को सूचना मिली कि उसे मिलने आये लोगों से मिलने के लिये उसे जेल के फाटक पर जाना होगा। नेता ने जेल के फाटक पर जाकर देखा कि उसकी मां और भाई के अतिरिक्त वह कवियित्री कुमारी भी, उसे एक बार देख पाने के प्रयोजन से, इतनी दूर की यात्रा करके आयी थीं। कवियित्री अपनी बात कह सकने का अंतिम अवसर समझ कर गए बिना न रह सकी थी। जेल के पहरेदारों की तीक्ष्ण आंखों और सन्देह के लिये कारण खोजते कानों की चौकसी में क्या बात होती ? पर आँखों की मौन भाषा को कौन रोक सकता था। आंखों ने अपनी बात कही और भावना ने अपनी भूख के अनुसार उसका अर्थ समझा।

जेल में मुलाकात के बीस मिनिट गुजरने में कितना समय लगता है। जेल के अधिकारी ने नेता को अपनी कोठरी की ओर लौटने की और उसे मिलने आये मां, भाई और कवियित्री को फाटक के बाहर लौटने की चेतावनी दी। नेता उन लोगों के चलने की और वे लोग नेता के चलने की प्रतीक्षा में क्षणभर ठिठके। नेता को ही पहले कदम उठाने पड़े।

कदम उठाते ही नेता ने देखा—कवियित्री झुकी और उसने धरती पर से नेता के चरणों के नीचे की धूल समेट कर अपने आंचल के कोने में यत्न से सम्भाल ली। जैसे तीन सौ मील से अधिक यात्रा करके वह इसी के लिये आयी थी।

नेता ने देखा और उसके शरीर में बिजली कौंद गयी। बिजली की इस लपट से उसकी आंखों के सामने फैले काले भविष्य का आकाश फट गया।

नेता की आंखों ने अपने सामने अंधकार का असीम व्यवधान स्वीकार कर लिया था। अंधकार के व्यवधान में किसी आशा या महत्त्वाकांक्षा की लौ या टिमटिमाहट की उम्मीद उसने नहीं की थी, परन्तु बिजली की इस निःशब्द तड़प से भविष्य का काला पाट फट गया। सामने भविष्य का काला समुद्र तो था परन्तु उस समुद्र में चामत्कारिक प्रकाश लिये एक प्रकाश स्तम्भ भी, आंचल के कोने में उसकी चरणरज सम्भालती भावनामयी कुमारी के आकार में। उसकी कल्पना ने साहस पाया—आजन्म कारावास की चौदह वर्ष की अवधि में वह मर नहीं जायगा। जीवित रहने के लिये कारण उसके पास है।·········चौदह वर्ष बाद, जब वह श्वेत केश, विरूप चेहरा और निस्तेज आंखे लिये संसार में लौटेगा, उसे अपना मार्ग पहचानने और ढूंढ़ने में कठिनाई नहीं होगी।····कर्त्तव्य के पथ पर अपनाये दारिद्र्य और तप में भी स्नेह का प्रकाश उसके थके पांव को ठोकर से बचाये रहेगा—भावनामयी, प्रतिभामयी इस कुमारी का हाथ उसके हाथ को थाम ले चलेगा। काले कोसों दूर, काला समुद्र लांघकर, काला पानी पीकर जीवित रहते समय भव्य आशा उसे सान्त्वना देती रही।

हमारे नगर में नेता के चले जाने के बाद से राष्ट्रीय आन्दोलन के क्रांतिकारी ढंग के बजाय कांग्रेस का प्रकट और सार्वजनिक ढंग ही अधिक सबल होता गया। कवियित्री क्रान्ति के मार्ग में त्याग की भावना का आदर करते हुए भी कांग्रेस के माध्यम से ही राष्ट्रीय कर्तव्य को पूरा करने का प्रयत्न करती रहीं। और जब क्रान्ति के मार्ग में अपने आपको निछावर कर देने के लिये तत्पर होकर भी वे एक बार अवसर से चूक गयीं तो फिर वैसा अवसर उतनी उत्कटता से आया भी नहीं। जब जीवन था तो जीवन की मांगें और प्रवृत्तियां भी थीं। कवियित्री ने बी० ए० पास किया, एम० ए० किया और कविता लिखती हुई जीवन को साधारण रूप से सार्थक बना सकने की चाह भी करने लगीं।

ब्रिटिश साम्राज्य की अपरिमित शस्त्र-शक्ति को निरस्त्र जनता के आग्रह के सामने समझौते के लिये झुकना पड़ा। देश ने अपना शासन करने का अधिकार एक सीमा तक पा लिया। जनता की प्रतिनिधि सरकार ने स्वतंत्रता संग्राम के वीरों को जेलों से मुक्त कर दिया। नेता भी आजन्म कारावास की

जगह सात ही वर्ष बाद कालेपानी से लौट आया। जनता ने इन वीरों के प्रति आदर और श्रद्धा से अपनी आंखें और हृदय बिछा दिये।

× × ×

नेता दोपहर की गाड़ी से नगर में आने वाला था। उसकी वीरता और त्याग का आदर करने वालों ने उसके सम्मान के लिये संध्या समय एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया था। सभा से पहले एक चाय पार्टी का प्रबंध था। स्टेशन पर उसका स्वागत करने वालों की भी काफ़ी भीड़ थी। सब का मन रखते हुए उस भीड़ से बाहर निकल पाने में उसे काफ़ी समय लगा। भीड़ उसके दर्शनों के लिये आतुर थी परन्तु स्वयं उसकी आंखें किसी और को देख पाने के लिये आतुर थीं।

चाय पार्टी से पूर्व कुछ मिनिट के अवकाश में नेता के लिये अपनी आतुरता का दमन कर लेना सम्भव न रहा। वह रास्ता बताने के लिये मुझे साथ लेकर चल पड़ा।

जिस समय ड्योढ़ी की सांकल बजा कर हम लोग भीतर से किसी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, साथ के कमरे से खिलखिला कर हंसने और दो आवाजों में विनोद का स्वर सुनाई दे रहा था। इन में से एक स्वर नेता की अत्यन्त असहाय अवस्था में उसकी चरणरज श्रद्धा से ले आने वाली कवियित्री का ही था। उस स्वर का प्रभाव नेता की मुख-मुद्रा पर स्पष्ट दिखाई दिया। वह क्षण भर के लिये रोमांचित हो गया।

सांकल बजाने के उत्तर में एक छोकरा नौकर आया। नेता ने अपना नाम और काले पानी से आने की सूचना साथ के कमरे में देने के लिये कहा। छोकरे ने भीतर से लौट कर उत्तर दिया—"भैन जी अभी बाहर गयी हैं। शाम को लौटेंगी।"

इस बार देखा कि नेता के दृढ़ता के प्रतिबिम्ब चेहरे पर सहसा पसीना आ गया। फिर सूर्य के सामने घना बादल आ जाने से पृथ्वी पर फैल जाने वाली छाया की तरह श्यामलता। इस छोटी-सी घटना या रुखाई के धक्के से स्वयं मुझे भयंकर आघात लगा। जिस पर यह चोट पड़ी थी, उसकी अनुभूति का अनुमान कर लेना आसान नहीं था।

चाय की पार्टी में नेता एक प्याली भी नहीं पी सका। जान पड़ता था कि वह खराब सड़क पर तेज चलती बस में खड़ा अपने पांव पर सम्भला रहने का यत्न कर रहा था। सभा में उसकी वाक-शक्ति शिथिल रही। नगर छोड़कर चले जाने की व्यग्रता वह छिपा न सका।

कुछ ही दिन बाद सुना कि कवियित्री का विवाह अच्छी आर्थिक स्थिति परन्तु सन्दिग्ध-सी ख्याति के व्यक्ति से होने वाला है। कवियित्री को अपने विश्वास और आस्था पर भरोसा था। नगर में कवियित्री से सामना होने पर उन्हें किसी दूसरे ही ढंग में देखा। नेता के साथ बीती घटना के प्रसंग की चर्चा का कोई अवसर या उससे किसी लाभ की आशा नहीं थी। जल्दी ही सुना कि विवाह हो गया। फिर बहुत समय बीत जाने से पहले ही सुना कि विवाह से कवियित्री को संतोष की अपेक्षा पश्चात्ताप और संताप ही मिला। वह भावना के ज्वार में ठगी गयी थी या जैसे अपनी तैरने की शक्ति में अति विश्वास से बाढ़ में कूद जाने वाला व्यक्ति ठगा जाता है। कवियित्री ने अपने आपको सम्भाला। वह समाज सेवा में लग गयी और उसने अपने आपको अपनी कविता में खो दिया।

कवियित्री ने अपने आपको तो खो दिया परन्तु संसार ने उसकी कविता पायी। कवियित्री की जीवन-शक्ति सब ओर से सिमिट कर उसकी कविता में वेगवान हो उठी; जैसे पूरे प्रदेश से सिमटा वर्षा का जल एक मार्ग से जाते समय वेगवान हो जाता है। वह नगर का गौरव बन गयी। दूर-दूर तक उसकी ख्याति फैल गयी।

नेता तो झोंपड़ा फूंक कर ही राष्ट्रीय कार्य के मार्ग पर चला था। लौटने की तो कोई जगह या कोई बात थी नहीं। नगर में मानसिक आघात पाकर नगर से उसे विरक्ति हो गयी थी। वह जिले के ग्रामों में काम करने के लिये निकल गया। उसके निस्वार्थ और अथक परिश्रम ने जनता का विश्वास पाया। उसकी बात ही जनता के लिये प्रमाण बन गयी।

अन्तरराष्ट्रीय संघर्ष का भंवर उठ खड़ा हुआ। इस भंवर में ब्रिटिश साम्राज्य का जहाज़ डावांडोल हो रहा था। साम्राज्यशाही ने आत्म-रक्षा के लिये भारत को भी अपने साथ बांधना चाहा। भारत की राष्ट्रीय भावना ने साम्राज्यशाही के प्रयत्न का विरोध किया। देश में उथल-पुथल मच गयी।

राष्ट्रीय भावना के प्रतिनिधि नेता फिर जेलों में गये। हमारे नगर का नेता भी जेल गया। इस बार देश विदेशी साम्राज्यशाही के बन्धन को तोड़ कर ही शांत हुआ। नेता इस बार जेल से लौटा तो उसके सामने निर्माण का और भी बड़ा काम था।

विदेशी गुलामी से मुक्त राष्ट्र ने जनता का प्रतिनिधि शासन आरम्भ करने के लिये चुनाव आरम्भ किया। हमारे नगर और जिले का एक ही निर्विवाद नेता था। उसकी निस्वार्थ सेवा और उसका त्याग प्रतिद्वन्द्वीहीन था। वही हमारे ज़िले की ओर से निर्विवाद प्रतिनिधि मनोनीत हुआ। इससे नेता को नहीं जिले और नगर को संतोष था।

नगर अपने इस निर्णय पर स्वयं अपने आपको बधाई देना चाहता था। नगर वासियों के अनुरोध से नेता ने इस अवसर पर नगर में आना स्वीकार किया। जनता की इच्छा थी कि इस सभा का नेतृत्व नगर का दूसरा 'गौरव' कवियित्री ही करे। इस सुझाव और तैयारी का कुछ उत्तरदायित्व मुझ पर भी था। इसीलिये घटना के लिये मुझे संताप है।

× × ×

पंडाल में स्वागत के लिये उत्सुक भीड़ जमा थी। वेदी पर सभा-नेत्री की कुर्सी के समीप एक कुर्सी नेता की प्रतीक्षा कर रही थी। मेज़ पर नगर के आदर और श्रद्धा से संजोया हुआ हार प्रतीक्षा कर रहा था पंडाल के द्वार पर नेता की जय का स्वर सुनाई दिया। नेता विनय से सिर झुकाये, सकुचाते हुए भीतर आये। नेता भीड़ की दोनों ओर जमी दीवार के बीच से वेदी की ओर बढ़े जा रहे थे। कवियित्री आदर और श्रद्धा से हार लेकर स्वागत के लिये खड़ी हो गयीं।

नेता ने वेदी की तीन सीढ़ियों में से पहली सीढ़ी पर कदम रखा। हाथ जोड़े हुए आंखें उठाईं। कवियित्री हार लिये हुए दो कदम आगे बढ़ आयीं। आंखें चार हुईं।

नेता का कृतज्ञता और विनय के उद्वेग से शिथिल और पसीजा हुआ चेहरा सहसा कठिन हो गया। आंखें पथरा गयीं। कदम दूसरी सीढ़ी पर ठिठक गये। जुड़े हुए हाथ कमर पर आ गये। चेहरे पर किंकर्तव्य विमूढ़ता की

मुद्रा । गले में आये उद्वेग को निगल नेता ने वेदी की ओर पीठ और जनता की ओर मुख फेर लिया ।

कवियित्री आगे बढ़ी बाहों पर आदर और श्रद्धा का भारी हार लिये दीपशिखा की भांति कांप कर स्तब्ध रह गयीं ।

नेता ने अपने आपको सम्भालने के लिये खंखारा । सांसों की स्तब्धता में उनका कांपता स्वर सुनाई दिया—"इस आडम्बर की क्या आवश्यकता है । मैं आदर का भूखा नहीं हूँ····यदि आप मेरा आदर और विश्वास करते हैं तो अपना उत्तरदायित्व भी समझिये ।" नेता के पास और शब्द नहीं थे । उन्होंने स्थिति सम्भालने के लिए एक बार और प्रयत्न किया—"आप लोग क्षमा करें ।·······मुझे यही कहना है ।·······आपके आदर के लिये धन्यवाद ।" नेता वेदी की ओर देखे बिना ही लौट गया ।

पंडाल नेता के निराभिमान, विनय और कर्मठता के प्रति आदर के लिये तालियों के शब्द और जय की पुकार से गूंज उठा । कवियित्री माथे पर आ गया पसीना पोंछना भूल, होंठ दबाकर वेदी से नीचे उतर आयीं ।

मैं समझ नहीं पा रहा था, क्या करूं ?

रह नहीं सका तो दोपहर बाद नेता के डेरे पर गया ही । एक बार इतना कहे बिना नहीं रह सकता था—तुमने यह किया क्या ?

मालूम हुआ कि नेता सिर दरद से चुप अकेले लेटे हैं । एक बार मिल लेना और भी आवश्यक हो गया । सचमुच ही नेता के चेहरे पर गहरी वेदना थी । आंखें मिलने पर आंखों में ही पूछा—क्यों ?

नेता ने कातर आंखें मेरी ओर उठाकर उत्तर दिया—"अहं का दम्भ कितना गहरा दबा रहता है ?····बदला लिये बिना रह न सका । अब लज्जित हूँ····दूसरे को यों ही छोटा मान लिया था ।"

नेता को इतनी बड़ी सज़ा देने के लिये तो मैं स्वयं भी तैयार होकर नहीं गया था । अब और क्या कहने को रह गया था ?

लेकिन मैं स्वयं अपराधी था कवियित्री के सामने । घटना के लिये अपने उत्तरदायित्व के प्रति खेद प्रकट करना तो आवश्यक था ही । संकोच के कारण

साहस नहीं हो रहा था पर जाये बिना सरता कैसे ? दरवाज़े पर मेरी दस्तक के उत्तर में कवियित्री ने स्वयं ही किवाड़ खोले। उनके हाथ में कलम देख कर ठिठक गया—"क्षमा कीजिये, आप कविता लिख रही थीं !"

"नहीं नहीं, आइये आइये !"—कवियित्री के चेहरे पर दबी-सी मुस्कान फैलाकर निखर गयी।

बात करना सरल हो गया। भीतर जा उनके सोफा पर बैठ जाने पर मैंने कहा—"इस समय आपके काम में विघ्न नहीं डालूंगा।"—और संक्षेप में कहा—"ऐसी आशा नहीं थी।........केवल क्षमा मांगने आया था।"

कवियित्री के चेहरे की मुस्कान संतोष के पुट से गहरी हो गयी। उनका हाथ चुप रहने के संकेत के लिये मेरे सामने उठ गया—

"दंड पाया,

मुक्त हुई,

अपने अभियोग से।"

कवियित्री ने तृप्ति की सांस ली। उनके चेहरे पर शान्ति की मुस्कान और भी फैल गयी।

५

## करुणा

ताल्लुकेदार समाज के लोग जगनपुर तालुका के राजा विष्णुप्रतापसिंह को कुछ अद्‌भुत आदमी समझते थे। कुछ लोग उन्हें 'साहब' कहकर पुकारते, कुछ 'खब्ती' समझते और कुछ 'वैरागी'। राजा साहब ने आरम्भिक शिक्षा लखनऊ के 'काल्विन ताल्लुकेदार कालेज' में पायी थी। अपने अध्यापक के उत्साहित करने से शिक्षा के लिये इंगलैण्ड चले गये। वहां कैम्ब्रिज में एम० ए० तक पढ़ते रहे। ताल्लुकेदारों को ऐसी शिक्षा की भला क्या जरूरत ? राजा विष्णुप्रताप की आयु चौदह वर्ष की थी तभी उनके पिता राजा नरेन्द्र-प्रतापसिंह का स्वर्गवास हो गया था। सरकार ने ताल्लुके का प्रबन्ध 'कोर्ट आफ वार्ड्‌स' के सुपुर्द कर दिया था। आयु इक्कीस वर्ष की हो जाने पर राजा विष्णुप्रताप अपने ताल्लुके का प्रबन्ध सम्भालने का अधिकार पा सकते थे, परन्तु उन्होंने परवाह नहीं की। बोले—"अच्छा-खासा प्रबन्ध चल तो रहा है।" वे कैम्ब्रिज में पढ़ते रहे। और फिर दो वर्ष योरूप में बैठे रहे। उनकी माता रानी साहिबा को उनके विवाह की चिन्ता खाये जा रही थी। लोगों ने अफवाहें उड़ायीं कि राजा विष्णुप्रताप जरूर किसी मेम के चक्कर में फंस गये हैं। लेकिन राजा साहब विलायत से लौटकर अपनी लखनऊ की कोठी में रहने लगे तो न कोई मेम आयी, न भोग-विलास का कोई दूसरा चिन्ह।

राजा साहब साथ लाये कुछ बक्से पुस्तकों के, चित्र बनाने का बहुत-सा सामान और दो कुत्ते ।

प्रकट में राजा साहब को रियासती काम से वैराग्य और रियासती ढंग से चिढ़ जान पड़ती थी, लेकिन छटे-छमाही जब कभी हिसाब देखने बैठ जाते तो इस बारीकी से पड़ताल करते कि मैनेजर, पेशकार और अहलकार थर्रा जाते। छोटी से छोटी त्रुटि की ओर संकेत कर जवाब तलब करते। उदारता भी थी, परन्तु बेपरवाही नहीं। राजाओं का ढंग नहीं था कि या तो हाथी पर बैठा दें या हाथी के पांव तले डाल दें। डांट-डपट और गाली-गलौज के बजाय उनका चुपचाप घूर कर देख लेना ही काफी था।

राजमाता का मन दहलता रहता—"यह ब्याह नहीं करेगा, तो क्या होगा? उत्तराधिकारी के बिना रियासत का क्या होगा?"

राजा साहब की संगति भी ताल्लुकेदार लोगों से नहीं, दो-चार वकील, डाक्टरों या यूनिवर्सिटी के प्रोफेसरों में ही थी। लोग उन्हें आधुनिक और प्रगतिशील विचारों का समझते थे। युवक उन्हें अपनी सांस्कृतिक आयोजना का प्रधान बनाने लगे। स्कूल-कालेजों के प्रबन्धक उन्हें अपने जलसों का सभापति बनाना चाहते थे। राजा साहब जानते थे कि लोग उन्हें ऐसा सम्मान देकर उनसे आर्थिक सहायता की आशा करते हैं। उन्होंने ऐसे कामों के लिये दस हजार वार्षिक नियत कर दिया था। जब यह रकम समाप्त हो जाती, तो वे उत्सव-समारोह के प्रधान बनने के निमंत्रण स्वीकार न करते।

राजा साहब से 'महिला-कालेज' के वार्षिकोत्सव में पुरस्कार वितरण के लिए अनुरोध किया गया था। राजमाता लखनऊ आयी हुई थीं। राजा साहब उन्हें भी साथ ले गये। उत्सव में कुछ लड़कियों ने कविताएँ पढ़ीं, कुछ ने संगीत सुनाया, एक-दो नृत्य भी हुए और फिर राजा साहब ने पुरस्कार बांटे। कई प्रकार के पुरस्कार थे और कई प्रकार की लड़कियों ने, विशेषकर युवा लड़कियों ने पुरस्कारों को कई ढंग से स्वीकार किया। उनकी पोशाकें भी आकर्षक थीं। कोई लड़की पुरस्कार लेने के लिए आशंकित होकर सामने आयी, कोई लजा कर और किसी ने निर्भय आंखें मिला कर पुरस्कार लेकर धन्यवाद दे दिया। पुरस्कार लेने वाली इन लड़कियों में एक थी बी० ए० श्रेणी की संतोष। बिलकुल सफेद ब्लाउज और सफेद धोती पहने हुए, आंखें झुकाये

परन्तु बिना झिझके उसने पुस्तकों का पुरस्कार में दिया जाने वाला बंडल विनयपूर्वक ले लिया और संकेत से धन्यवाद प्रदर्शन कर लौट गयी।

राजा साहब का संतोष से पहला कोई परिचय नहीं था, परन्तु उसके चेहरे पर नजर पड़ने से उन्हें कुछ याद आ गया। उत्सव समाप्त होने से पहले उनकी दृष्टि दो-एक बार उसकी ओर फिर गयी।

पुरस्कार-वितरण के उत्सव के एक सप्ताह बाद राजमाता प्रातःकाल की पूजा समाप्त कर राजा साहब के कमरे में प्रसाद और आशीर्वाद देने आयी थीं। राजमाता अपनी पूजा में नित्य ही भवानी से बहू का मुंह दिखाने का वरदान मांगती थीं।

राजा साहब ने उन्हें जरा बैठ जाने के लिए कहा और बोले—"अम्माजी, उस दिन महिला-कालिज के जलसे में एक लड़की देखी थी। अगर उसके ब्याह की बातचीत कहीं न हो गयी हो, तो मैं उससे ब्याह कर सकता हूँ।"

राजमाता का कलेजा बल्लियों उछल पड़ा—"कौन सी बेटा?"

राजा साहब ने मां को जरा शान्त होकर बात सुन लेने के लिए कहा—"मगर जरूरी बात यह है कि आप या लड़की के परिवार वाले ही, लड़की से यह जरूर पूछ लें कि वह किसी दूसरे से तो ब्याह करना नहीं चाहती। यदि उस लड़की का ब्याह दूसरी जगह तय नहीं हुआ तो मैं उससे ब्याह करने के लिए तैयार हूँ।"—और राजा साहब ने बता दिया—"उस लड़की का नाम संतोष है, बी० ए० में पढ़ती है। उसे सबसे अच्छा निबन्ध लिखने के लिए इनाम मिला था। इस में जाति-पांति का बखेड़ा डालने की कोई जरूरत नहीं है। विवाह मैं सिविल-मैरेज के ढंग से करूंगा।"

राजा साहब ने ऐसी बातें छः-सात वर्ष पहले की होतीं तो राजमाता को प्रत्येक बात पर आपत्ति होती, परन्तु इस समय तो उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो भवानी ने ही उनकी प्रार्थना पूरी की हो। राजमाता ने आंखें मूंद भवानी को स्मरण कर हाथ जोड़े और उसी समय मोटर में बैठ कर लड़की का पता लेने के लिए कालेज की प्रिन्सिपल से मिलने चल दीं।

संतोष के मामा "फेडरेशन-बैंक" के मैनेजर थे। राजमाता के प्रस्ताव पर संतोष की मामी के मन में केवल एक आपत्ति उठी—हाय, हमारी निर्मला

संतोष से कहीं अच्छी है, छः महीने बड़ी भी है। पर वह तो उस जलसे में गई ही नहीं थी। निर्मला महिला कालेज की अपेक्षा अधिक अच्छे समझे जाने वाले और खर्चीले 'आई० टी० कालेज' में पढ़ती थी। इस बात का संतोष भी हुआ कि भानजी की शादी की इतनी बड़ी जिम्मेवारी इस तरह बिना किसी खर्च के पूरी हो जायगी। इतने बड़े राजा साहब को दहेज का क्या लोभ होगा। शादी भी अदालती-शादी होगी, तो बरात और दूसरे मेहमानों के झगड़े से भी बचे। बस एक पार्टी दे देंगे। राजमाता ने लड़की से उसकी इच्छा पूछ लेने की बेहूदा बात उठाई ही नहीं। भले घर की लड़कियों से ऐसी बातें कहीं पूछी जाती हैं क्या ?

संतोष के मामा, मामी उसकी अनुमति की बात क्या पूछते ? मामी ने संतोष को इतना जरूर सुना दिया—"पिछले जन्म में तूने जाने क्या पुण्य किये थे। माता-पिता बचपन में ही छोड़ गये, फिर भी खूब पढ़-लिख लिया और अब राजघराने में जा रही है, राज करेगी। कहते हैं, तेरह गाँव की रियासत है। दो लाख सालाना की आमदनी है। ननद, जेठानी, देवरानी का भी कोई झगड़ा नहीं है।

संतोष ने इस विषय में कभी कुछ सोचा ही नहीं था। अब यही सोचा कि इतने बड़े घर जाकर वह क्या करेगी, कैसे अपने आपको सम्भालेगी ? राजा लोगों के यहां जाने कैसे ढंग और रिवाज होंगे ? उसने सुना था कि राजा, रजवाड़ों के यहां बीसियों दासियां होती हैं, भयंकर पर्दा होता है, घोर अनाचार और अत्याचार होता है। सोच कर शरीर में कंपकंपी आ गयी, परन्तु यह भी सुना कि यह राजा साहब बिलकुल नये ढंग के, बहुत साधु आदमी हैं।

विवाह अदालती ढंग से हुआ, परन्तु हुआ बैंक के मैनेजर शिवप्रसाद श्रीवास्तव के बंगले पर ही। विवाह के समय या पार्टी के समय भी संतोष के वर राजा साहब ने कोई बात कर लेने का यत्न नहीं किया। संतोष तो लज्जा और संकोच से सिर झुकाये ही थी। सुसराल की कोठी पर पहुँचकर राजमाता ने संतोष को छाती से लगा, सिर चूम कर प्यार किया और आशीर्वाद देकर कहा—"बड़ी प्रतीक्षा कराकर तूने मुंह दिखाया, मेरी बेटी !"

संतोष थक कर उसे दिये गये कमरे में कोच पर बैठी थी।

"मैं आ सकता हूँ ?"—कह कर राजा साहब भीतर आ गये।

संतोष सहम कर सिर झुकाये बैठ गयी। राजा साहब कोच पर ही बैठ गये और धीमे स्वर में बोले—"हम दोनों को पूरा जीवन एक साथ ही बिताना है इसलिए हम दोनों का आपस में परिचित हो जाना ठीक है।"

संतोष सिर झुकाये चुप रह गयी।

राजा साहब कहते गये—"विश्वास है, तुम्हारी राय तुम से पूछ ली गयी होगी और यह विवाह तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम पर जबरदस्ती करके नहीं किया गया।....क्यों ?"

संतोष ने घबराकर तुरन्त इन्कार में सिर हिलाया और मन में सोचा कि कितनी कठोर बात कर रहे हैं।

राजा साहब ने फिर कहा—"व्यर्थ का संकोच हम लोग कब तक करेंगे ? हमें बातचीत तो करनी ही होगी। हमें एक दूसरे से परिचित हो जाना चाहिए न ?"

संतोष ने सिर झुका कर हामी भर ली।

राजा साहब ने फिर कहा—"तुम मुझसे बिलकुल अपरिचित हो, परन्तु मैंने तुम्हें पुरस्कार-वितरण के जलसे में देखकर पहचान लिया था। तुम्हारी एक तस्वीर मेरे पास है।"

संतोष बिलकुल घबरा गयी—क्या कह रहे हैं ? कैसी तस्वीर ? मैंने अकेले कब तस्वीर खिंचवायी ? यह शुरू में ही क्या होने वाला है ? कैसे आदमी हैं ? वह सिहर उठी। क्या उत्तर देती।

राजा साहब का स्वर कुछ और कोमल हो गया—"वह तस्वीर देखोगी ?.... दिखाऊं ?"

संतोष ने भय का सामना करने के लिए धड़कते हुए हृदय को सम्भाल कर सिर झुकाकर स्वीकृति दी।

राजा साहब ने फिर अनुरोध किया—"मुंह से बोलो, तो लाऊं !"

"दिखाइये !"—पूरी शक्ति लगाकर केवल ओठों के शब्द से संतोष ने उत्तर दिया।

"अभी लाता हूँ"—कह कर राजा साहब दूसरे कमरे में चले गये। संतोष के मस्तिष्क में आंधी आ रही थी। सोच रही थी—क्या कभी कालेज से आते-जाते किसी ने छिपकर मेरी तस्वीर ले ली? कैसे लोग होते हैं? जाने क्या होने वाला है?

राजा साहब एक एलबम लेकर लौटे। संतोष के मस्तिष्क और हृदय पर हथौड़े चल रहे थे। कोच पर बैठ कर राजा साहब ने एलबम खोलकर संतोष के सामने कर दिया। एलबम के काले मटियाले कागज पर पोस्टकार्ड के आकार की तीन तस्वीरें एक साथ लगी हुई थीं। तीनों के नीचे क्रमशः लिखा था—'ममता', 'करुणा' और 'श्रद्धा'।

संतोष के मस्तिष्क में घुमड़ रहे बादलों की घटा छंट गयी और उसके चेहरे पर हलकी मुस्कान आ गयी। तीनों तस्वीरें प्रायः मिलती-जुलती थीं। वह समझ गयी की किसी बहुत बड़े विदेशी चित्रकार की बनायी तस्वीरों के फोटो थे। रूप बहुत ही सुकुमार और चेहरों पर 'ममता', 'करुणा' और 'श्रद्धा' के भाव भी उतने ही व्यक्त। चित्र बहुत प्यारे थे।

राजा साहब ने बीच की तस्वीर की ओर संकेत कर फिर पूछा—"है न तुम्हारी तस्वीर?"

संतोष ने इनकार में सिर हिला दिया। पर अपनी इतनी सुन्दर तसवीर और उस तसवीर के प्रति राजा साहब का आदर देख मन गर्व से गदगद भी हो गया।

"नहीं, बिलकुल तुम्हारी तस्वीर है"—राजा साहब ने आग्रह किया—"विश्वास नहीं आता हो तो आइने के सामने जाकर मिला लो।"

संतोष ने और स्पष्ट इनकार में सिर हिलाया। अपनी तुलना इतनी सुन्दर रूप से किये जाने से बहुत अच्छा तो लग रहा था।

राजा साहब ने कहा—"नहीं, तुम्हारी ही तस्वीर है। मैंने तुम्हें देखा, तो तुरन्त पहचान गया कि इसकी तस्वीर मेरे पास है। वैसा ही रूप और तुम्हारे हृदय के भाव भी तुम्हारे चेहरे पर कितने स्पष्ट थे।"

संतोष के मस्तिष्क में दूसरा चक्कर आ गया। उसकी आंखों के सामने राजा साहब का रूप बदल गया। कृतज्ञता में उसका सिर झुक गया। राजा

साहब ने उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा—"ऐसे कब तक शरमाओगी ? क्या मुझ से बात करने को मन नहीं चाहता ?"

संतोष ने लज्जा से सिर झुका लिया।

राजा साहब ने कहा—"अच्छा एक बात का फैसला हो जाय। मैं तुम्हें 'करुणा' पुकारुंगा।....ठीक है ?"

संतोष बोल ही नहीं पा रही थी। मुख से शब्द तो निकल सकते हैं, हृदय तो नहीं निकल कर बाहर आ सकता। वह चाह रही थी कि अपना हृदय निकाल कर इस देवता के चरणों में रख दे। वह सोफा से सरक कर फर्श पर आ गयी कि राजा साहब के चरणों में सिर रख कर अपने भाव प्रकट कर दे।

राजा साहब ने संतोष को बाहों में संभाल लिया—"यह ठीक नहीं, करुणा ! बोलो न, तुम मुझे क्या पुकारोगी ?"

संतोष का सिर राजा साहब के घुटनों पर टिक गया। बड़े यत्न से उसने होठों से कहा—"आप मेरे देवता हैं।"

"देवता नहीं"—राजा साहब ने समझाया—"हम दोनों जीवन भर के मित्र, साथी और प्रेमी हैं।....हैं न ?"

संतोष ने अपना माथा राजा साहब के घुटनों पर टिका दिया। वह उनके चरणों में समर्पण हो जाना चाहती थी। पर वे उसे अपनी बाहों से रोके हुए थे। इस विवशता ने उसके सुख को कितना अपार कर दिया था। कुछ ही क्षण में इस अपरिचित व्यक्ति से वह कितना अगाध प्रेम करने लग गयी।

राजा साहब ने करुणा को फिर सोफे पर बैठा कर कहा—"करुणा, क्या बताऊं, कुत्ता बहुत चिल्ला रहा है।" संतोष को एक छोटे कुत्ते के पीड़ा में 'केऊं केऊं' करने का आर्त्त स्वर सुनाई दिया। राजा साहब ने बताया—"पड़ोसी के एक बरस के बच्चे ने खेल-खेल में इसकी आंख में लकड़ी मार दी है। बहुत खून बहा।"

राजा साहब कुत्ते को गोद में लिये आये। कुत्ते की एक आंख और सिर पट्टी में लिपटा था। वह राजा साहब से लिपटा जा रहा था। राजा साहब उसे पुचकार रहे थे। राजा साहब की करुणा देख संतोष का हृदय उमड़ आया। उसने आगे बढ़कर कुत्ते को गोद में ले लेना चाहा।

राजा साहब ने कहा—"नहीं, अभी तुम्हें पहचानता नहीं! नहीं मानेगा।"

राजा साहब बहुत देर तक कुत्ते को सहलाते रहे। मालिक के स्पर्श से कुत्ते को सांत्वना मिल रही थी, परन्तु पीड़ा का जोर होने पर वह बार-बार रो उठता। संतोष राजा साहब की इस अद्भुत करुणा को मुग्ध दृष्टि से देख रही थी।

कुत्ते को फिर व्याकुल होता देख राजा साहब उठे और उन्होंने डाक्टर को फोन कर राय ली—"क्या एस्प्रीन या कोई और दवाई उसका दर्द रोकने के लिये नहीं दी जा सकती?"

डाक्टर ने कोई दवाई बतायी। राजा साहब ने दवाई का नाम लिखकर चौकीदार को दिया—"जाओ, जहां से मिले, यह दवाई लाओ!"

चौकीदार को लाठी लेकर अंधेरे में जाता देख उन्होंने टोका—"नहीं, रात में ऐसे कहां जाओगे। ड्राइवर को कहो, गाड़ी में जाकर दवाई ले आये।"

संतोष देख रही थी, जाने क्या-क्या सोच रही थी और पल-पल में श्रद्धा के सागर में गहरी उतरती जा रही थी।

रात डेढ़ बजे के बाद कुत्ता सो गया तो राजा साजा साहब को फ़ुर्सत मिली। राजा साहब ने संतोष के दोनों कंधों पर हाथ रखकर क्षमा-सी मांगी—"करुणा, मेरी इस बेवकूफी से परेशान तो नहीं हो गयी तुम?"

आनन्द और संतोष से विभोर होकर संतोष ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—"नहीं।"

× × ×

राजमाता अपनी चांद जैसी बहू से बहुत संतुष्ट थीं, परन्तु इस बात का क्षोभ था कि अपने एकमात्र पुत्र के विवाह पर वे मन का कोई उत्साह पूरा नहीं कर सकीं। कब से जिद्द कर रही थीं कि लखनऊ में राजा साहब ने सब कुछ अपने साहबी तरीके से कर लिया, परन्तु रियासत में वे प्रजा को क्या मुंह दिखायेंगी। वे रियासत में जाने पर कुछ न कुछ तो करेंगी ही। अहल-कार, कामी-कम्मी और नेग की उम्मीद करने वाले लोगों के साथ ये अन्याय क्यों हो। रियासत की रानी को एक बार चार दिन के लिए तो अपने घर

जाना ही चाहिये, फिर चाहे लौटकर लखनऊ ही रहे। प्रजा क्या जानेगी कि उनकी रानी है कि नहीं।

राजा साहब को मां के उपवास के डर से उनकी बात भी माननी पड़ी। होली पर रियासत में जाने की बात पक्की हो गयी। राजमाता मुंशी जी को लेकर संक्षिप्त से जलसे की तैयारी की बात करती रहतीं।

संतोष को देहात का कुछ परिचय नहीं था। उतना ही परिचय था, जितना पुस्तकों और उपन्यासों से हो सकता है। वह स्वच्छन्द वातावरण और प्रकृति की शोभा में जाने की बात सोच रही थी। यह भी खयाल था, शायद वहां पर्दे के अदब-कायदे निबाहने होंगे, रानी बनकर जाने कैसा व्यवहार करना होगा ?

राजमाता कुछ दिन पहले ही रियासत में जा चुकी थीं। राजा साहब और संतोष के पहुँचने की तारीख निश्चित थी और उस दिन उनके स्वागत के लिये राज-महल के सामने रियासत के स्कूल के लड़कों और प्रजा के एकत्र होने की बात थी।

राजा साहब ने संतोष से बात की—"करुणा, इतने लोग भीड़-भड़क्का करके खुद परेशान होंगे और हमें भी परेशान करेंगे। इस से क्या फायदा होगा। हम दो दिन पहले ही चल जाएँ, तो क्या हर्ज ?"

संतोष राजा साहब की आडम्बरहीन सादगी पर और भी निछावर हो गयी। 'न' कहना तो वह जानती ही न थी।

राजा साहब और संतोष बहुत बड़ी शिवरलेट गाड़ी में खूब तेजी से लखनऊ से बहत्तर मील दूर जगनपुर की ओर चले जा रहे थे। पक्की सड़क पर पचपन मील एक घंटे में चले जाने के बाद मोटर कच्ची सड़क पर चलने लगी। मोटर के पीछे धूल की ऐसी घटा उठ रही थी कि उसके बीच से कुछ दिखायी नहीं दे सकता था। गाड़ी के धीमे चलने पर भी ऐसे हिचकोले लगते कि शरीर उछल-उछल जाता।

सूर्यास्त का समय हो रहा था। ढाक फूल कर जंगल लाल हो रहे थे। कहीं-कहीं सरसों के फूले हुए खेत आ जाते। संतोष आंखें फैलाकर इन नयी चीज़ों को देख रही थी। सड़क के किनारे टेढ़ी-मेढ़ी कच्ची दीवारों और फूस

के छप्परों से छाये गांव दिखायी दे जाते। कहीं फूस और उपलों के स्तूप। गांव के समीप से जाते समय गोबर की अथवा दूसरी दुर्गन्ध गाड़ी के बन्द शीशों के भीतर भी आ जाती। मोटर को देखने के कौतूहल में नंगे बच्चे, लड़के और लड़कियां सूखे-सूखे, काले हाथ-पांव और फूले हुए पेट लिए रास्ते के दोनों ओर आ खड़े होते। संतोष को उस ओर देखते देखकर राजा साहब ने धीमे से कहा—"यह है हमारे गांवों की शोभा।"—और फिर कुछ सोच कर बोले—"और इन्हीं गांवों की पैदावार पर शहरों की सब शोभा और ठाठ हैं.......यह गाड़ी भी, जिसमें हम इनके पास से गुजरते हुए अपनी नाक दबा रहे हैं।"

संतोष लजा गई। नाक पर रक्खा रुमाल हटा लिया। उस ने श्रद्धा से फैली हुई आंखों से राजा साहब के चिन्तित चेहरे की ओर देखा और सोचा, कितने विचारवान हैं ये !

मोटर रियासत में राजमहल के समने पहुँच गयी। अभी अंधेरा घना नहीं हो पाया था। मोटर को देखते ही खलबली मच गयी। राजा साहब उसकी उपेक्षा कर संतोष को साथ ले भीतर चले गये।

सुबह संतोष की नींद जल्दी ही खुल गयी। राजा साहब के कमरे महल की तीसरी मंजिल पर थे। नींद खुलते ही संतोष के कान में पहला शब्द पड़ा कोयल की कूक का। उसका मन यों भी प्रफुल्ल था। अपने घर, अपने राज में, अपनी प्रजा का आदर पाने के लिए आने की भावना मन में थी। उठते ही कोयल की कूक कान में पढ़ने से उसके ओठों पर मुस्कान आ गयी। बिना आहट किये वह पलंग से उठी और प्राकृतिक शोभा की झलक पाने के लिए खिड़की की ओर चली गयी।

अचानक उसे एक और शब्द सुनाई दिया—किसी के पीड़ा में चिल्लाने का। एक सिहरन-सी अनुभव हुई। उसकी नजर महल के नीचे सिमिट आयी। बाईं ओर महल के साथ खिंचे छोटे से अहाते का दृश्य ऊपर से दिखाई दे रहा था। पीड़ा में चिल्लाने की यह आवाज़ वहीं से आ रही थी।

संतोष ने सांस रोक कर उस ओर देखा और फिर ध्यान से देखा कि कई आदमी पीड़ा-दायक विचित्र अवस्था में झुके हुए, अपनी टांगों के नीचे से

बाहें निकाल कर अपने झुके हुए सिर में से कानों को पकड़े मुर्गे बने हुए थे। आस-पास कमर में चपरासियों जैसी पेटियां बांधे कुछ लोग खड़े थे। जमीन पर गिर पड़े एक आदमी को एक चपरासी लकड़ी से मार रहा था और मार खाने वाला आदमी गला फाड़ कर दया के लिए चिल्ला रहा था।

संतोष कांप उठी। अधीर हो—"देखिये! देखिये!" पुकार कर वह राजा साहब के पलंग की ओर झपटी।

राजा साहब की नींद टूट चुकी थी। वे उठकर आंखें मल रहे थे। संतोष की पुकार सुनकर वे चौंके और उसकी ओर देखा। उसे खिड़की की ओर से आते देख और सुबह के सन्नाटे में नीचे से आती चिल्लाहट सुनकर उनका विस्मय का भाव जाता रहा। स्थिति समझ कर उन्होंने कहा:—

"करुणा, उधर नीचे कचहरी की तरफ मत देखो! यह सब तो रियासतों में होता ही है।"

"वहां नीचे"....संतोष की सांस रुक रही थी; बोल नहीं पा रही थी।

"हां-हां, मैं समझता हूँ। शायद इस जलसे-वलसे की वसूली की बात होगी या लगान नहीं दे पाये होंगे। तुम उधर मत देखो। करुणा, यह तो होगा ही।"—स्नेह से राजा साहब ने समझाया।

"पर आप तो दया...."—संतोष ने हांफते हुए कहना चाहा।

"हां, पर इन बातों में दया की गुंजाइश कहां है। इसी व्यवस्था पर तो हमारा अस्तित्व है। शहद खाना है, तो मक्खियों से छीनना ही पड़ेगा। करुणा, दया कर सकने का साधन भी तो इसी से आता है........।"

संतोष सिर पकड़ कर फर्श पर बैठ गयी। यह सब शायद उसके रियासत में आने की खुशी मनाने के लिए हो रहा है।

राजा साहब ने फिर स्नेह से पुकारा—"करुणा!"

यह सम्बोधन सुनकर संतोष का मन चाहा कि अपना सिर फर्श पर पटक दे।

६
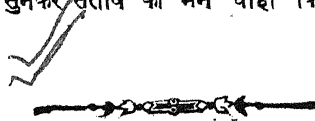
# भगवान के पिता के दर्शन

ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मत्व की प्राप्ति के लिए पुण्य-सलिला गंगा और यमुना के संगम पर एक बहुत बड़े वाजिश्रवा यज्ञ का अनुष्ठान किया गया था। ऐसा विराट यज्ञ शायद ही पहले कभी हुआ होगा। यज्ञ में देश-देशान्तर के तपोवनों से महर्षि, योगी और ब्रह्मवेत्ता आये थे। उन लोगों ने यज्ञ-कुंड में जौ, तिल, सुगन्धित पदार्थों, घी और बलि की असंख्य आहुतियाँ डालीं। इन आहुतियों से यज्ञ-कुंड से इतनी ऊँची अग्नि-शिखायें उठीं कि तपोवन के ऊँचे से ऊँचे वृक्षों की चोटियों के पत्ते भी झुलस गये। यज्ञ-कुंड से उठे पवित्र धुएँ ने एक पक्ष तक पुण्यात्माओं के लिए पृथ्वि से स्वर्ग तक सदेह जाने का मार्ग बना दिया। वातावरण कई योजन तक यज्ञ की पवित्र सुगन्धि से भरा रहा।

अयोध्या, मिथिलापुरी, अंग-देश आदि देशों के धर्मात्मा राजाओं ने ऋषियों के सत्कार के लिए व्यंजनों की अपार भेंटें भेजीं, और सहस्रों दुधारु गौएँ दान दीं। यह व्यंजन और उत्तम दूध से बनी पायस इतने प्रचुर थे कि ऋषियों, अतिथियों और सहस्रों आश्रमवासियों के उपयोग से भी समाप्त न होकर योजनों तक बनों में फैल गए। तपोवन के मृग और पक्षी भी फल, मूल और दाना-दुनका चुगना छोड़कर व्यंजनों और खीर से ही निर्वाह करने

लगे और कई दिन बाद जब उन्हें फिर घास, पत्ते और दाने का उपयोग करना पड़ा, तो जीवों के दांतों और चोंचों में कष्ट होने लगा।

परन्तु ज्ञानी ऋषि इस प्रचुरता में भी निर्लिप्त रह कर ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मत्व की प्राप्ति की चर्चा में ही लीन रहे। यज्ञ के धूम से सुवासित वातावरण में, वृक्षों के नीचे और पर्ण-कुटियों में, दास-दासी ज्ञान-चर्चा से थके हुए ऋषियों के अंग दबाते रहते। विवाद से गला सूख जाने पर सोमरस से भरे कमंडल उनके सामने कर देते और ऋषि ज्ञान-चर्चा में लीन रहते। चर्चा का विषय यही था कि इन्द्रियों और मन की अनुभूति से परे, सूक्ष्म ब्रह्म और ब्रह्मत्व की प्राप्ति का श्रेयस्कर मार्ग क्या है? मोक्ष अथवा ब्रह्मत्व एक ही है अथवा उनमें भेद है? ब्रह्मत्व और मोक्ष की प्राप्ति के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग, राजयोग, हठयोग और भक्तियोग में से कौन श्रेष्ठ है? ज्ञान का मार्ग तप है अथवा वह अहंकार मात्र है? निर्गुण ब्रह्म के गुणों का चिन्तन विरोधात्मक है अथवा नहीं? ऐसे ही अनेक पारलौकिक, आध्यात्मिक और आदिदैविक प्रश्नों पर चर्चा हो रही थी।

कश्यय ऋषि के पुत्र महर्षि विभांडक ऐसी ज्ञान-चर्चा और शास्त्रार्थों को कभी वृक्षों के नीचे और कभी पर्ण-कुटियों में सुनते। बोल-बोल कर ऋषियों के गले बैठ गये, परन्तु सर्व-सम्मत सत्य का निर्णय न हो पाया। तब ऋषियों ने बच और क्वाथों का सेवन कर फिर ज्ञान-चर्चा आरम्भ की। महर्षि विभांडक इस ज्ञान-चर्चा से उपराम हो गये। वे इस परिणाम पर पहुँचे कि इन सब ज्ञानियों के ज्ञान का साधन पंच-तत्वों से बने शरीर और मस्तिष्क की अनुभूतियाँ और कल्पनाएँ ही हैं। वाणी तो स्थूल शरीर की क्रिया है, शरीर का धर्म है। उससे अपार्थिव सूक्ष्मता की प्राप्ति कैसे हो सकती है? इसलिए ज्ञान की चर्चा व्यर्थ है। सूक्ष्म ब्रह्म के ज्ञान की प्राप्ति का मार्ग तप द्वारा ब्रह्म का ध्यान और ब्रह्म में लीनता का आग्रह ही हो सकता है।

महर्षि विभांडक ने यौवन में अपने पिता कश्यप ऋषि से ज्ञान प्राप्त किया था। संयम से आश्रम का गृहस्थ जीवन बिताकर और एक पुत्र प्राप्त कर वे तप में लीन हो गये थे। ऋषि-पत्नी वंश की रक्षा के लिए एक संतान प्रसव कर शरीर छोड़ चुकी थीं। महर्षि विभांडक वृद्धावस्था में अनुभव कर रहे थे कि तप के लिए उपयुक्त समय युवावस्था ही थी। वृद्धावस्था में शरीर

शिथिल हो जाने पर तप में उग्रता सम्भव नहीं रही। उन्होंने और भी सोचा—स्थूल शरीर की रक्षा की चिन्ता करना ऐसी ही प्रवंचना है, जैसे जल निकालने के लिए कुआँ खोदते समय कुएँ में फिर मिट्टी डालते जाना।

महर्षि विभांडक ने सोचा, मनुष्य स्वयं जो कुछ प्राप्त नहीं कर सकता उसे पुत्र द्वारा प्राप्त करने की आशा रखता है। इसीलिए शास्त्र में कहा है:—"आत्मावै पुत्रः"। उन्होंने निश्चय किया कि तप द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति का लक्ष्य उनके जीवन में अपूर्ण रह गया, परन्तु उनका किशोर पुत्र यौवन की शक्ति से उस लक्ष्य को पा सकेगा।

अपने किशोर पुत्र के लिए तप द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित कर महर्षि विभांडक ने अनुभव किया कि अब भारद्वाज आश्रम उनके लिए उपयुक्त स्थान न होगा। आश्रम में निरन्तर चलने वाली ज्ञान-चर्चा किशोर कुमार में ज्ञान अभिव्यक्ति का अहंकार ही उत्पन्न करेगी। आश्रम के तापस-नियमों में भी मुनि-कन्याओं का संग किशोर कुमार में शरीर-धर्म को ही जगायगा। यह प्रवृत्ति ही तो प्रकृति की वह शक्ति है, जो आत्मा का आवरण बन कर ब्रह्म के प्रकाश को रोके रहती है। इस विचार से महर्षि विभांडक अपने किशोर पुत्र को लेकर भारद्वाज आश्रम छोड़ उत्तरारण्य की ओर चले गये। एकान्त में अपना आश्रम बनाकर उन्होंने किशोर पुत्र को ब्रह्म-ध्यान के तप में लगा दिया।

किशोर मुनि को संग-दोष द्वारा आसक्ति के प्रभाव से बचाये रखने के लिए, महर्षि विभांडक ने इस आश्रम के लिए राजाओं द्वारा भेजे हुए दास-दासियों और सैकड़ों गौओं में से केवल वृद्ध दासों और नया दूध देने वाली गौओं को ही रख कर, शेष सब को फिर दान कर दिया। गौओं के बछड़े बड़े हो जाने पर और फिर दूध दे सकने के लिए सन्तान की कामना करने पर, वे उन्हें दूसरे तपस्वियों और दीनों को दान कर देते थे। इस प्रकार वे सांसारिकता के सभी प्रसंगों को आश्रम से दूर रखते थे।

उत्तरारण्य के एकान्त आश्रम में तप करते विभांडक-पुत्र किशोर मुनी का शरीर, ब्रह्मचर्य के अक्षय वर्चस्व से, असाधारण रूप से बढ़ने लगा। उनका शरीर देवदारु वृक्ष की तरह ऊँचा, वक्षस्थल पर्वत की विशाल शिला की तरह चौड़ा और बाँहें साल के पेड़ की डालों की तरह हो गईं। चेहरे पर

आँखें टिक नहीं पाती थीं। महर्षि विभांडक अपने पुत्र को देखकर संतोष अनुभव करते। वे सोचते कि मनुष्यों के वासना से जर्जर, दुर्बल शरीर सूक्ष्म ब्रह्म की प्राप्ति के योग्य तप नहीं कर सकते। मेरे पुत्र का देवोपम शरीर ही उस तप को पूरा करने में समर्थ होगा। फिर उन्हें चिन्ता भी होती कि ऐसे दर्शनीय यौवन की शोभा के लिए अनेक संकट भी आ सकते हैं। उनके आश्रम में दासियों और मुनि-कन्याओं के यौवन-लोलुप नेत्रों का भय नहीं था, परन्तु निर्जन बन में भी कभी कोई देवकन्या, किन्नरी, यक्षिणी अथवा अप्सरा तो आ ही सकती थी। दूसरों के तप से ईर्ष्या करने वाले इन्द्र की कई कहानियाँ आश्रमों में प्रचलित थीं। इन्द्र जब कभी किसी ऋषि के उग्र तप का समाचार पाते तो स्वर्ग से अप्सराएँ भेजकर उनका तप भंग करा देते थे। महर्षि विभांडक का मन अपने युवा पुत्र के तप और वर्चस्व को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए चिन्तित रहने लगा।

ऐसी ही चिन्ता में महर्षि विभांडक एक दिन बन में घूम रहे थे कि सिंह द्वारा मारे गये एक बड़े भारी गैंडे का सींग पड़ा हुआ उन्हें दिखायी दिया। उस सींग के कारण गैंडे का भयानक जान पड़ने वाला रूप भी उनकी कल्पना में जाग उठा। अचानक महर्षि को अपनी चिन्ता का उपाय सूझ गया। महर्षि उस गैंडे के सींग को उठाकर आश्रम में ले आये। अपने पुत्र को बुलाकर उन्होंने आदेश दिया—"पुत्र, अपनी तपस्या को उग्र करने के लिए तुम यह श्रृंग भी अपनी जटा में धारण कर लो।" आज्ञाकारी, तपस्वी और बलवान पुत्र के लिए यह बोझ और कष्ट कोई बड़ी बात नहीं थी। उन्होंने गैंडे का बड़ा सींग जटा में धारण कर लिया।

विभांडक के तपस्वी पुत्र के तप की कीर्ति देश-देशान्तरों में फैल गयी कि उग्र तप के प्रभाव से उनके माथे पर सींग निकल आया है। युवा मुनी का नाम भी 'ऋष्य श्रृंग' ( सींग वाले ऋषि ) अथवा श्रृंगी ऋषि प्रसिद्ध हो गया।

तभी त्रेतायुग में महाराज दशरथ अयोध्या में राज करते-करते आयु के चौथे पहर में आ पहुँचे थे। महाराज दशरथ का प्रताप अखंड था। देवता भी उनकी सेवा करने का अवसर पाना अहोभाग्य समझते थे। पृथ्वी पर उन्हें किसी से भी भय नहीं था इसलिए वे युवावस्था में राजाओं के योग्य भोगों

में लीन रहे। महाराज अपनी रानियों को भोग-विलास का नहीं, केवल गृहस्थ-धर्म-पालन और पुत्र-प्राप्ति का साधन समझते थे इसलिये अपनी तीनों साध्वी रानियों की ओर उनका ध्यान कम ही गया। यौवन में उन्हें पुत्र का ध्यान आया ही नहीं। वृद्धावस्था में जब यह चिन्ता हुई, तो उनमें सामर्थ्य न थी। महाराज ने अश्वमेध और गो-मेध आदि यज्ञों द्वारा देवताओं को प्रसन्न करके पुत्र पाने की चेष्टा की, परन्तु असफल ही रहे। महाराज दशरथ के पुत्र प्राप्ति के लिए असमर्थ और क्लीव हो जाने की बात सभी ओर फैल गई इसीलिए जब पशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रिय-वंश से हीन कर देने का प्रण करके सभी क्षत्रियों को समाप्त करना शुरू किया, तो उन्होंने विदेह जनक को, जो जन्म से क्लीव थे और दशरथ को जो विलास की अधिकता से क्लीव हो गये थे, वंश-उत्पत्ति में असमर्थ समझ कर छोड़ दिया था!

महाराज दथरथ के मंत्री ब्रह्मर्षि वशिष्ठ और व्यवहार-कुशल ऋषि जावाली ने विचार कर महाराज को परामर्श दिया—"महाराज, जिस वस्तु का जो उपाय है वही करना चाहिये। पुत्र-प्राप्ति के लिए एक-मात्र उपाय पुत्रेष्टि-यज्ञ है। वही आपको करना चाहिए। ऐसी स्थिति में पूर्व-पुरुषों ने भी ऐसा ही किया था। ऋगवेद के कन्या-विकर्ण सूक्त में भी ऐसा ही उपदेश है।"

ऋषियों और ज्ञानियों ने महाराज की तीनों साध्वी, पतिपरायणा रानियों—कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा को भी समझाया। पुत्र की कामना तीनों ही रानियों को थी। महाराज की अवस्था उनके सामने थी ही। उन्हें पुत्रेष्टि-यज्ञ में योग देने के लिए अनुमति देनी ही पड़ी।

इक्ष्वाकु-वंश और अयोध्या के राज्य की रक्षा पुत्रेष्टि-यज्ञ द्वारा महाराज दशरथ के लिये उत्तराधिकारी प्राप्त करने से ही हो सकती थी। महाराज दशरथ, ब्रह्मर्षि वशिष्ठ, कामदेव और मुनि जावाली चिन्ता करने लगे कि पुत्रेष्टि-यज्ञ के उध्वर्यु या होता के रूप में किस समर्थ ज्ञानी को आमंत्रित किया जाये? कश्यप-पुत्र विभांडक के पुत्र शृंगी के अखंड यौवन और वर्चस्व की कीर्ति भी अयोध्या में पहुँच चुकी थी। जन-साधारण में ऐसी भी किंवदन्ती फैली हुई थी कि अमानुषिक संयम और ब्रह्मचर्य निबाहने वाले शृंगी ऋषि मनुष्य नहीं वरन् किसी अमानुषिक योनि से हैं, तभी तो वे ऐसा संयम निबाह सके हैं! और इसीलिये उनके माथे पर सींग उग आया है। कोई

उन्हें ऋषि पिता और मृगी माता की संतान भी बताते थे। परन्तु ब्रह्मर्षि वशिष्ठ अपने ज्ञान-बल से जानते थे कि ऋषि विभांडक ने अपने युवा पुत्र के माथे पर सींग क्यों बाँध दिया है। शृंगी ऋषि मनुष्य ही हैं, परन्तु प्रश्न था कि शृंगी को पुत्रेष्टि-यज्ञ सम्पन्न करने के लिए अयोध्या कैसे लाया जाय ? विभांडक अपने पुत्र पर कड़ी दृष्टि रखते थे। उनसे प्रार्थना करने पर वे शृंगी को नगर में भेजकर उनका तप भंग होने की अनुमति कभी न देते। महाराज दशरथ, वशिष्ठ और जावाली इसी चिन्ता में घुले जा रहे थे।

शृंगी ऋषि को सदा सींग धारण किये रहने का अभ्यास हो जाने पर विभांडक ऋषि को इस बात का भी भय न रहा कि उत्तरारण्य में भटक आने वाली कोई देवकन्या, किन्नरी, यक्षिणी अथवा अप्सरा शृंगी के यौवन से आकर्षित होकर युवा तपस्वी को पथ-भ्रष्ट कर देगी। उनके मन में तीर्थाटन करने की भी इच्छा थी। एक ही स्थान पर बारह वर्ष से भी अधिक रहते-रहते मन भी उचाट हो गया था। वे पुत्र को सुरक्षित समझ खूब दूध देने वाली बहुत-सी गौओं की व्यवस्था कर तीर्थ-यात्रा के लिये चले गये।

ब्रह्म-ज्ञानी वशिष्ठ को विभांडक के तीर्थाटन के लिए जाने का समाचार मिला, तो उन्हों ने चतुर साथी सुमन्त को अनेक सैनिकों और दूसरी सवारियों के साथ शृंगी ऋषि को लिवा लाने के लिए भेज दिया।

सारथी सुमन्त शृंगी ऋषि को अयोध्या ले आये। राज-महलों में पुत्रेष्टि यज्ञ के लिए सब सुविधाएँ और समारोह प्रस्तुत था, परन्तु वासना से मूलतः अपरिचित युवा ऋषि का ध्यान न संगीत की ओर जाता, न सुगन्धों की ओर, न व्यंजनों की ओर, न नारियों और रानियों के लोल-लास्य की ओर ही। वे इन वस्तुओं से खिन्न हो कर मुँह मोड़ लेते। उनकी अवस्था ऐसी ही थी, जैसे वन से जबरदस्ती बाँध कर लाये गये जीव की आरम्भ में होती है। महारानी कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा के उनसे पुत्रेष्टि-यज्ञ में सहयोग पाने के प्रयत्न व्यर्थ रह गये और उनकी कामना अपूर्ण ही रही।

ब्रह्मज्ञानी वशिष्ठ ने रानियों को उपदेश दिया—हे कुल का हित चाहने वाली, पति की आज्ञाकारिणी, सुलक्षणा देवियो ! संतान देने की सामर्थ्य से पूर्ण यह युवा ऋषि किसी भी प्रकार की इच्छा और रस की अनुभूति से अपरिचित है। उसकी ज्ञान और कर्म की इन्द्रियाँ अनुपयोग से जड़ और

अनुभूति-शून्य हैं। उस की इच्छा करने की शक्ति को सचेत करने के लिये उस के अभ्यासों के मार्ग से ही आरम्भ करना चाहिए। वह सदा गौओं के दूध और रामदाने की खीर का ही आहार करता रहा है। उसे पहले सुस्वादू और सुवासित खीर खिलाकर उसकी रसना को जागरित करो। एक रस दूसरे रस को और एक इच्छा दूसरी इच्छा को जगाती है। इसी मार्ग से कुछ समय तक उसकी सेवा करने से तुम्हारी कामना सफल होगी।"

पति और आप्त पुरुषों का आदर करने वाली महाराज दशरथ की तीनों सुलक्षणा रानियों ने उत्तम खीर अपने हाथों से पका कर सोने के रत्न-जटित पात्रों में शृंगी ऋषि के सामने रखी। शृंगी ऋषि खीर का आहार आश्रम में भी करते ही थे, परन्तु राजमहल के दुर्लभ द्रव्यों से और चतुर रानियों के हाथ से बनी खीर में और ही रस था। शृंगी इस खीर को चटकारा ले-लेकर खाने लगे। रस की अनुभूति से रसना जागी। इसके साथ ही दूसरी अनुभूतियाँ भी जागने लगीं। उन्हें संसार में और बहुत कुछ दिखाई देने लगा। इस प्रकार एक वसन्त ऋतु से दूसरी वसन्त ऋतु तक चतुर रानियों के निरन्तर सेवा करते रहने से शृंगी ऋषि को रानियों के कामना से कातर नेत्रों में पुत्र की इच्छा भी दिखाई देने लगी। रानियों की इच्छा से द्रवित होकर ऋषि पुत्रेष्टि-यज्ञ में सहयोग देने की इच्छा भी अनुभव करने लगे।

बड़ी और अनुभवी होने के कारण महारानी कौशल्या की कामना सब से पहले पूर्ण हुई। फिर रानी कैकेयी की और फिर रानी सुमित्रा की। आयु कम होने के कारण ऋषि का सुमित्रा पर विशेष अनुग्रह हुआ और उन्हें लक्ष्मण और शत्रुघ्न दो पुत्र प्राप्त हुए।

इक्ष्वाकु-कुल की रक्षा का उपाय हो जाने पर और प्रयोजन शेष न रहने पर ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने शृंगी ऋषि को फिर उनके आश्रम में भिजवा दिया। जब शृंगी ऋषि अयोध्या में पुत्रेष्टि यज्ञ का विधान निबाह रहे थे, महर्षि विभांडक तीर्थाटन से उत्तरारण्य में लौट आये। आश्रम के रक्षक बूढे दासों से उन्हें शृंगी के अयोध्या ले जाये जाने का समाचार मिला, तो वे बहुत खिन्न हुऐ। समझ गये कि यह सब इर्ष्यालु बूढ़े वशिष्ठ का कुचक्र है। वह किसी का ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेना सह ही नहीं सकता। महामुनी विश्वामित्र के उग्र तप द्वारा दूसरी सृष्टि रचने की सामर्थ्य पा लेने पर भी वशिष्ठ ने उनका

ब्रह्मर्षि-पद स्वीकार नहीं किया, उन्हें राजर्षि ही बनाये रखा। मन-ही-मन यह भी अनुभव किया कि सांसारिक छल से अपरिचित पुत्र को अकेले छोड़ कर जाना उनकी ही भूल थी। पर शृंगी के प्रति भी उनका मन विरक्त हो गया। पुत्र के तप के पथ से गिर जाने के कारण उसकी प्रताड़ना कर उन्होंने कहा—"हे तपोभ्रष्ट, परम पद तुझे प्राप्त नहीं हो सकता। तू आश्रम की गौवें चराने योग्य ही है। जा, वही कर।"

लगभग बारह-बारह वर्ष के तीन युग का समय और बीत गया। इक्ष्वाकु कुल-सूर्य भगवान राम, रावण का संहार कर पृथ्वी को पाप के बोझ से मुक्त कर अयोध्या लौट चुके थे। महर्षि वशिष्ठ ने शुभ घड़ी और नक्षत्र देखकर उनके राज्यतिलक की तिथि की घोषणा कर दी थी। देश-देशान्तर से धर्मप्राण नागरिक और तपोवनों से ऋषिवृन्द शुभ पर्व पर पृथ्वी पर अवतार धारण किये भगवान के दर्शनों के पुण्यलाभ के लिए अयोध्या नगरी की ओर चले आ रहे थे। उत्तर देश से आने वाले ऐसे ही ऋषियों का एक दल विश्राम और दोपहर के आहार के लिए महर्षि विभांडक के आश्रम में आ टिका था।

महर्षि को उदासीन और निश्चिन्त बैठे देखकर यात्री ऋषियों ने आश्चर्य प्रकट किया—"क्या ऋषिवर ने नहीं सुना कि भगवान ने पृथ्वी पर अवतार धारण किया है! देश-देशान्तर से लोक-समाज, ऋषि, तपस्वी और देवता भी सशरीर भगवान के दर्शनों के लिये अयोध्या जा रहे हैं। क्या आप भगवान के साक्षात्कार का पुण्य-लाभ नहीं करेंगे? ऐसे पुण्य-लाभ का अवसर तो युगों में कहीं एक बार आता है!"

इस चेतावनी से विभांडक उपेक्षा से जागे और ऋषियों के दल के साथ यात्रा करने के लिए अपना कमण्डल और मृगचर्म बाँधने लगे। उसी समय शृंगी बन से लौट आये। पिता को यात्रा की तैयारी करते देख शृंगी ने पूछा—"पिता जी, क्या फिर तीर्थाटन के लिए जाने का संकल्प है!"

महर्षि ने अपने काम से आँख उठाये बिना ही उत्तर दिया कि पृथ्वी पर भगवान ने नर-शरीर धारण किया है। उन्हीं के दर्शन के लिए यात्री-ऋषियों के साथ वे भी अयोध्या जा रहे हैं।

शृंगी ऋषि के मन में अयोध्या की पुरानी स्मृति जाग उठी—"हमें भी साथ ले चलियेगा, पिताजी!"—उन्होंने प्रार्थना की।

"तू तपोभ्रष्ट है, तू भगवान के दर्शन क्या करेगा ?" पिता ने वितृष्णा से उत्तर दे दिया।

पिता के तिरस्कार से अनुत्साहित होकर शृंगी केवल इतना ही कह पाये—"अयोध्या के राज-महलों में तो एक बार हम भी गये थे।"

पुत्र की बात से महर्षि विभांडक का क्रोध ऐसे चेत उठा, जैसे फूँक मार देने से राख के नीचे सोई हुई चिनगारियाँ चमक उठती हैं, परन्तु इन चमक उठी चिनगारियों के प्रकाश में उन्हें अचानक एक नया ज्ञान भी प्राप्त हुआ।

महर्षि विभांडक ने कमण्डल और मृगछाला को छोड़ अपना मस्तक पुत्र के चरणों में रख दिया और शृंगी को सम्बोधन कर बोले—"भगवान को पृथ्वी पर नर-शरीर देने वाले तुम्हें प्रणाम है।"

और फिर यात्रा के लिए तैयार ऋषियों के दल की ओर मुख कर उन्होंने पुकारा—"ऋषिवृंद, आप लोग भगवान के दर्शनों के लिए अयोध्या की यात्रा करें। मैं तो यहीं भगवान के पिता के दर्शन कर रहा हूँ!"*

*इस कहानी का आधार बाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के आदि पर्व के आठ से तेरह सर्ग तक के श्लोक हैं।

७

# न कहने की बात

रविवार था। छः दिन रविवार की प्रतीक्षा में रहती हूँ कि समय पर स्कूल जाने का झंझट नहीं होगा, आराम से विश्राम में दिन कटेगा। पर रविवार आता है तो और भी भारी पड़ जाता है। छः दिन तो काम पूरा करने की मजबूरी में शरीर घसिटता रहता है। रविवार को यह मजबूरी नही रहती तो शरीर हिलाना भी कठिन हो जाता है।·······सब कहती हैं कि मैं स्लिम हूँ! खाक·······!

रविवार के दिन क्या करूं और पास-पड़ोस में बात भी करूं तो किससे? लड़कियां है, बारह-तेरह बरस की। वे या तो अपनी गुड़ियों के ब्याह की बातें कर सकती हैं या आंख-मिचौनी के खेल में धमा-चौकड़ी मचा सकती हैं। उनका और मेरा साथ क्या? या फिर, दो-तीन बच्चों की माताएँ हैं। उनकी नज़रों में मैं लड़की हूँ। बाइसवां लगा है पर विवाह तो नहीं हुआ। जब बात करेंगी, बेबी के दाँत निकलने के कारण उसकी कमजोरी की या पहिला या दूसरा बच्चा होने के अनुभवों के ब्यौरे की। उम्र में उनके बराबर होने या पुस्तकों से इस विषय में उनसे कुछ अधिक ही जानकारी होने पर भी मैं ये बातें सुनती अच्छी नहीं लगती, क्योंकि मैं कुआंरी हूँ। यह नहीं समझा जाना चाहिये कि ये सब बातें मुझे मालूम हैं। मैं क्या करूं? एक ही उपाय है कि रविवार के

साथ के कमरे से मशीन की घरघराहट आ रही थी और बंगले की टीन की छत से वर्षा की घन-घनाहट। थोड़ी देर में मशीन की आवाज वर्षा में डूब गई। मैं मुन्ना के शरीर पर हाथ रखे, गोद में उसके शरीर को अनुभव करती बैठी सोच रही थी—अभी उठती हूँ।

कमरे के बन्द दरवाजे पर खट-खटाने की आवाज आई। किवाड़ों के शीशे धुंधले होने के कारण जान न सकी कौन है। हैरान भी थी, इस वर्षा में यह कौन? नौकर को पुकारती तो मुन्ना उठ जाता। खीझ आई पर उठना पड़ा। पलना तय्यार था। मुन्ने को लिटाकर किवाड़ खोले। और भी विस्मय हुआ; इतनी वर्षा में स्त्री। बोराल जीजी, दस्तूर साहिब की बहिन थीं।

"आइये, आइये!........क्या बात है? इस वर्षा में?" पानी भरी हवा के झोंके ने हम दोनों को भीतर धकेल दिया।

बोराल जीजी—हम लोग दस्तूर साहब की बहिन को जीजी या उनके सुसराल के नाम से बोराल जीजी पुकारते हैं। जीजी ने पलने में सोये मुन्ने की ओर देखकर कहा—"सो गया?" मेरी बात भूल ही गई। एक ओर पड़ी कुर्सी को उठा लिया और धीमे से पलने के पास रख कर कि खटका न हो बैठ गई।

"जीजी, इतनी बारिश में?"—मैंने फिर पूछा

जीजी ने अपने आप को संभाला—"बारिश, हां, एकदम ही आ गई.... खयाल था मामूली बूंदा-बांदी होगी। सोचा....तुम घर पर होगी मिल आऊं।"

"हां, बड़ा अच्छा किया।"—मैंने उनकी बात रखी—"मैं आप के यहां शाम को जाने को सोच रही थी।"

"इतने सबेरे ही सो गया?"—बोराल जीजी ने प्यासी आंखे मुन्ने पर गड़ाये पिघले से स्वर में फिर कहा।

बात करने के लिये मैंने पूछा—"जीजी, आप की साड़ी काफी भीग गई है दूसरी निकाल दूं?........इसे फैला दूं?"

"अरे नहीं, क्या है इतनी गरमी तो है।" जीजी ने स्वर दबाकर उत्तर दिया कि मुन्ना न चौंके। उनकी आंखें फिर मुन्ने की ओर घूम गई—"आज

बहुत सबेरे सो गया । जागता होता तो जरा खिलाती इसे ।........हाय, कितना प्यारा लग रहा है !"—जीजी चुप मुन्ने की ओर देखती रह गईं ।

जीजी हमारे यहां मुन्ने के लिए आती हैं और किसी के लिए नहीं । इतनी वर्षा में भी रह नहीं सकीं । उनकी आंखें मुन्ने की ओर लग जाती हैं, तो फिर हटती ही नहीं । ताई—अकाउन्टेंट साहब की मां ने कई बार कहा है कि इस औरत को अपने यहाँ न आने दिया करो । बच्चे को कैसे देखती है ।........बांझ की नजर बच्चे के लिए अच्छी नहीं होती । बच्चे का कलेजा बहुत नरम होता है । पर कोई कैसे रोक दे ! मेरा तो इतना जिगरा नहीं है । पड़ोसिने और ताई जी जीजी की बाबत कितनी ही बातें कहा करती हैं । कहती हैं—स्वभाव की अच्छी नहीं है। इसका मर्द इतना सीधा नेक आदमी है, अच्छी भली कमाई है पर इसे सुखाता ही नहीं । तब भी वह बेचारा महीने का दो सौ रुपया भेज देता है । बाल-बच्चा कोई है नहीं । हो भी कैसे ! सुसराल में रहे तब तो ! तभी तो ऐसी कटखनी हो गई है । जवानी में एक आदमी से इस का मन मिला हुआ था । उसने इस की बड़ी बहन से शादी कर ली । जब कोई बात करेगी, अपनी बड़ी बहन को कोसने लगेगी; कहेगी—डायन के छः बच्चे हैं । जैसे उस ने इसी के बच्चे छीन लिए । उस से बड़ी जलन है । मायका इसका सूरत में है । मां-बाप से भी लड़ाई हुई है कि उन्होंने इसके मंगेत्तर से बड़ी की शादी क्यों कर दी ! भैया के यहां पड़ी रहती है । किसी के हरख-सोग से मतलब नहीं । बस बच्चों को घूरा करती है । लोग तो सब कुछ कहते हैं पर मुझे तो जीजी पर बड़ी दया आती है ।

जीजी हमारे यहां आई थीं । यों चुप बैठे अच्छा नहीं लग रहा था कुछ बात तो करनी ही थी । पूछ लिया—"बोराल साहब तो अहमदाबाद में रहते हैं !"

जीजी के चेहरे का भाव बदल गया—"रहते हैं तो अपने को क्या !" जीजी ने रूखा सा उत्तर दिया और जैसे मेरी बात से बचने के लिए मुन्ने की ओर और घूम गयीं ।

मैंने फिर साहस किया—"लोग कहते हैं, बोराल साहब स्वभाव के भले हैं । जीजी, कुछ झगड़ा हो गया था !........कभी किसी समय मूड में कोई बात हो जाती है ।"

"क्या मूड हो जायगा !"—जीजी ने चिढ़ कर उत्तर दिया—"उन्हें तो ब्याह ही नहीं करना था। खामुखा जिन्दगी बरबाद की हमारी।"

मैं हैरान जीजी की ओर देखती रह गई—क्या मतलब होगा ?

जीजी मेरी ओर घूम गईं, जैसे उत्तेजना में क्या कुछ कह डालना चाहती हों। "सब मुझे ही कहते हैं, कोई खराबी है। डाक्टर को दिखाओ, इलाज करवा लो। मैं तो जानती थी, कुछ होता तो मैं अपने में खराबी समझती। मैंने कहा, सब मुझे ही कहते हैं। गुस्से में जाकर डाक्टर को दिखा दिया कि मुझ क्यों कहे कोई। मैंने कहा—ये क्यों नहीं जाते डाक्टर के यहां ? पर वह डाक्टर के यहां क्या जायें ! कुछ हो तो इलाज भी हो।"

मैं तो जीजी की तरफ देखती रह गई,—क्या बात, क्या मतलब ! इतना ही समझा कि ऐसे मर्दों को कुछ और कहते है, बोराल वही होंगे।

जीजी आवेश में कहती गईं—"मुझे कहते हैं—क्या भाई के बच्चे अपने बच्चे नहीं !"—अरे दूसरे का बच्चा अपनी कोख का बच्चा हो सकता है…………? उससे क्या मेरी कोख फल जायगी ? मेरे साथ खामुखा शादी करके धोखा दिया। उसे शादी करनी ही नहीं चाहिये थी। मां-बाप की पसन्द थी, मैं कुछ बोली नहीं। सोचा, यह लोग जो कर रहे हैं ठीक ही करेंगे।………अरे अपनी बड़ी बहिन ने दगा किया। उस आदमी से उसके छः बच्चे हैं नहीं तो मेरे ही होते।"

जीजी आवेश में फुफकार-सी छोड़ कर मुन्ने की ओर घूम गयीं। जीजी की बात अच्छी नहीं लगी। मन में आया—बच्चे इनके नहीं हुए तो क्या ! पति-पत्नी का साथ और प्यार भी तो कोई चीज होता है। कह दिया —"पर जीजी, कहते हैं, बोराल साहब आदमी तो बड़े भले हैं, तुम्हारा ख्याल भी करते हैं। मालूम नहीं कोई कह रहा था, यहां भी दो सौ रुपया भेज देते हैं। साथ और प्यार भी तो कुछ होता है !"

जीजी उबल पड़ीं—आदमी ही नहीं है, भले क्या हैं !………क्या होता है प्यार ?……प्यार क्या होता है ?"…………अपना पेट छू कर मुन्ने की ओर बढ़ते हुए बोलीं—"यही नहीं हुआ तो प्यार क्या हुआ ?………यही तो है प्यार !"

मैं शरमाकर चुप रह गई। जीजी फिर प्यासी नजर से मुन्ने की ओर देख रही थीं। मैं अपने मन में सोच रही थी—बच्चे तो सभी को प्यारे लगते हैं। पर पति-पत्नी के प्यार का मतलब क्या केवल यही होता है?……… मैं बाईस की हो गई हूँ, माता-पिता बहुत चिन्ता में हैं मेरे ब्याह के लिए। उन्हें विश्वास है कि मैं पढ़-लिख कर भी उन का निर्णय मानूंगी। मैं भी सोचती हूँ, जो भी वर मिले, भला आदमी हो उसी को प्यार तन-मन से करूंगी।…………प्यार का मतलब क्या यही होता है? मैं भी क्या प्यार के नाम से जीजी की तरह यही चाहती हूँ? बच्चे का मतलब तो………मेरी आंख मुन्ने की ओर चली गई।

हाय, प्यार और ब्याह का मतलब………!

शरम से मेरे कान झनझना उठे। फिर ख्याल आया—क्या कुँआरी लड़कियां ऐसी बात कभी सोच सकती हैं? पर सभी जवान कुँआरी लड़कियां प्यार और ब्याह की बात सोचती हैं।………पर बच्चे तो अच्छे लगते हैं, और उनके बिना जीवन में क्या है?

………मतलब तो वही है पर ऐसे कहा थोड़े ही जाता है!

८

## भगवान का खेल

मुझे अमला पर बहुत गुस्सा आ रहा था कि रात के साढ़े दस बज गये और अब तक घर नहीं लौटी। मैंने तांतिया के पिता जी से भी कई बार कहा—"हाय, मरी कहां रह गयी? कहीं कोई एक्सिडेंट ही तो नहीं हो गया?" उन्होंने कहा—"कहां पता करें? दफ्तर उसका बन्द हो गया होगा। फोन करने से भी जवाब नहीं मिलेगा। पुलिस को रपट करवा सकते हैं।" पुलिस का नाम सुनकर मैं भी चुप रह गयी। उनकी आजकल रात की ड्यूटी है। दस बजे वे भी चले गये।

अमला की डेढ़ बरस की लड़की ने नींद लगने पर मां को याद किया। बच्ची मुझ से काफी हिली हुई है। दिन भर मेरे ही पास तो रहती है। मालूम है कि रात में अमला लड़की को मुंह में बोतल देकर साथ लिटा लेती है। लड़की सो जाती है, बोतल गिर पड़ती है तो अमला बोतल ले उठ जाती है और काम-काज, चौका-बर्तन समेटती है।

अमला बरसों से हमारी पड़ोसिन है। वह कभी देर तक रात में बाहर नहीं रही। पिछले महीने एक रात को छोड़ कर, जब कंचनबाई हाल में बिहार की बाढ़ में सहायता के लिये जलसा हुआ था और लोगों ने उस से नाचने के लिए बहुत कहा था। तब मुझे भी साथ ले गयी थी। किले में छः बजे शाम

को दफ्तर से छुट्टी होती है तो वह बछड़े के लिए हुड़काई हुई गैया की तरह दौड़ती सीधी घर आती है। आकर बच्ची को छाती से लगा लेती है। तोतली बोली में उससे दो-चार बातें करती है, दो-चार मुझसे, और घर के काम में लग जाती है।

अमला तीन बरस से हमारे पड़ोस में है। वह खोली बसन्त वाडकर ने अपने ब्याह के बाद किराये पर ली थी। बसन्त रेल में गार्ड की नौकरी पर भर्ती हुआ था। तनखाह अभी सब मिलाकर सौ ही मिलती थी। अमला ने तभी टाइप का काम सीखना शुरू कर दिया था। मुझ से कहती थी—"स्कूल में पढ़ती थी तो खामुखा डांस सीखने का शौक था। हम गरीबों को डांस से क्या मतलब ? तभी टाइप करना सीख लिया होता तो काम तो आता। खाली पेट कोई क्या नाचे ? किस के लिये नाचे ?"

रेल के एक्सिडेंट में बसन्त की मृत्यु हो गयी तो अमला के सिर पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। बेचारी ने क्या देखा था अभी दुनिया का ! तीन महीने की बच्ची गोद में थी। लोगों ने समझाया, अपनी सास के यहां चली जा। उसने मुझे बताया—"क्या चली जाऊं ? मेरे दो जेठ, एक देवर हैं। सभी की हालत पतली है। वे लोग अपनी मां को ही नहीं झेल पाते। बेचारी बुढ़िया आज एक के यहां, तो कल दूसरे के यहां। सभी उसे टालते रहते हैं तो मुझे ही क्या झेलेंगे ? किसी तरह तीन महीने गुजर जायें, लड़की छः महीने की हो जाये। फिर इसे ऊपर के दूध पर कर दूंगी और नौकरी कर लूंगी। मुझे बच्ची को सम्भालने में मदद दिये रहना।" बड़ी हिम्मत से और नेकचलनी से ऐसे ही निबाहे आ रही है। उमर तो बेचारी की इक्कीस से क्या कम होगी, पर लगती है बिलकुल सत्रह बरस की लड़की-सी। चेहरा भी बड़ा भोला-भोला।

अमला साढ़े दस बजे के लगभग आई तो सीधे हमारी खोली में। आकर उसकी आंखों ने लड़की को खोजा। उसे देखकर एक लम्बी सांस ली। पहले तो खड़ी रह गयी जैसे होश में न हो। रंग पुराने कागज की तरह बिल्कुल पीला। आंखें फटी-फटी सीं।

"कहां थी अब तक ?"—मैंने चिन्ता से पूछा।

अमला सटकर मेरे पास बैठ गयी और मेरी आंखों में देख कर पूछने लगी—"ताई मैं जाग रही हूँ ? देख तो ! मुझे चूंटी तो काटकर देख ! मुझ से बात कर !"

मैं डर गयी, हाय, इसे क्या हो गया ! उसके कन्धे पर हाथ रखकर तसल्ली दी—"क्या हो गया है री तुझे ? कहां थी ? क्या बात थी ?"

अमला ने मेरी गोद में सिर रख दिया और कांप-कांप कर रोने लगी। मैंने बहुत तसल्ली दी। बात पूछी। कुछ सम्भली तो मेरे छोटे लड़के के साथ सोयी अपनी लड़की को उठाकर छाती से लगाकर रोने लगी। बार-बार कहे जा रही थी—"मैं अभी जी रही हूँ ? मरी नहीं ?"

पानी लाकर उसका मुंह धुलाया। एक प्याली चाय बनाकर पिलायी। सम्भली तो उसने बताया:—

"बड़े बाबू ने चार बजे लाकर रिपोर्ट दी कि खतम करके जाना होगा। मैनेजिंग डाइरेक्टर ने आज शाम को ही मांगी है। उसमें साढ़े छः बज गये।

"दफ्तर से निकल कर 'बस-स्टैण्ड' पर आयी तो बड़ी लम्बी, दोहरी क्यू लगी हुई थी। सभी हैरान थे। शायद दो बसें फेल हो गयी थीं। मैं क्यू में खड़ी हुई थी। मेरे साथ ही एक आदमी आकर खड़ा हुआ। आते ही जैसे पहचान कर बोला—'नमस्ते बाई !'

"मैंने तो पहचाना नहीं। नमस्ते कर दी। फिर बोला—'उस दिन कंचनबाई हाल में अपने बड़ा अच्छा डांस किया। हमारे घर की लड़कियां भी गयी थीं। बड़ा अच्छा डांस था। आप तो कालिज में पढ़ती है न ?'

"मैंने सोचा, कौन बात करे। कह दिया—'हां।' वह बोला—'बस फेल हो गयी क्या ? बड़ी लम्बी क्यू है। आप 'ओ-टू' बस में जायेंगी ? टैक्सी कर रहा हूँ। मुझे महिम जाना है। आपको रास्ते में जहां बोलेंगी छोड़ दूंगा। उसने इधर-उधर देखा और एक टैक्सी को बुला लिया। मैंने सोचा, इतनी भीड़ के सामने क्या डर है। क्या 'नहीं, नहीं' करूं ? देर भी कितनी हो गयी थी। मैं टैक्सी में बैठ गयी। वह खुद भले आदमी की तरह आगे ड्राइवर के साथ बैठा। मैं पीछे अकेली थी।

"बोरी बन्दर से टैक्सी क्राफर्ड मार्केट की तरफ चली तो मैंने सोचा, बस तो इधर नहीं जाती। फिर सोचा, टैक्सी का रास्ता होगा। ताई तू जानती है, मैं टैक्सी में कभी काहे को बैठी! बस एक बार मिन्नी के पिता जी अस्पताल से टैक्सी में लाये थे।

"टैक्सी थोड़ी दूर गई थी, उस आदमी ने पीछे घूम कर पूछा—'आप केडल रोड जायंगी कि महिम ?' मैंने बताया—'प्रभादेवी।' तो बोला—'यहां अपना घर है रास्ते में। टैक्सी का किराया क्यों दें ? अपनी गाड़ी है, आप को घर छोड़ आयेंगे।' मैं चुप रही। रास्ते में विक्टोरिया पार्क तो पहचाना फिर टैक्सी घूम गयी। बड़े से बंगले के फाटक में जाकर रुकी। टैक्सी वाले ने किराये की भी बात नहीं की।

"उस आदमी ने मुझ से कहा—'एक मिनिट आइये, पानी-वानी कुछ पीजिये। लड़कियां भी आप से मिल लें। फिर आपके मकान पर पहुँचा देंगे।'

"मैंने कहा—'मुझे देर हो जायगी फिर कभी सही।' मन ही मन मैं डरी भी।

"उसने फिर आग्रह किया—'बस एक मिनिट! चलिए, यहां कमरे में बैठिये। मैं लड़कियों से कह दूं और ड्राइवर को बुला लूं।' एक गाड़ी सामने खड़ी भी थी।

"मुझे सन्देह हुआ पर सोचा—भई, क्या पता ? और फिर वहां आ गयी थी तो एकदम करती क्या! अनजान जगह थी। एक बार सोचा ऊपर न जाऊं, पर कमरे में और बाहर फरक ही क्या था!

"मुझे जीना दिखाकर वह बोला:—'बहिन जी, आप ही ऊपर चली चलिए, जनाना ऊपर है।'

"सोचा और स्त्रियां होंगी तो अच्छा ही है।

"ऊपर जाकर देखा, बहुत बड़ा कमरा था। लकड़ी के पार्टिशन पड़े थे। स्त्री कोई भी नहीं थी ? सोफा-वोफा रखा था। मुझे वहां बैठाकर उस आदमी ने दरवाजा बन्द कर दिया और बोला—'देखो यहां, घबराने की जरूरत नहीं। तुम तो नाचने-गाने वाली हो तुम्हें क्या फिकर है। खाओ-पीओ। बोलो, क्या मंगा दें ?'

"मैंने उसे डांटा—'क्या बकता है ? पुलिस में दे दूंगी। मुझे अभी छोड़ कर आ, जहां से लाया है।'

"बड़ी बेपरवाही से उसने कहा यह—'रंग मत दिखाओ। हमारे मामले में बोलने की हिम्मत पुलिस को नहीं है। बहुत मिजाज दिखाओगी तो जहां तुम्हारी जैसी दसियों फैंक दी हैं वहां तुम्हें भी डाल देंगे। यहां चीखने-चिल्लाने से भी कोई फायदा नहीं। कोई सुन नही सकता।'

"मेरे अंग-अंग से पसीना छूटने लगा। मैंने गिड़गिड़ाकर कहा—'मैं यहां नहीं ठहरूंगी, चाहे मुझे मार डालो। मुझे कुछ नहीं चाहिए। मेरी बच्ची तड़प रही होगी। दस घंटे हो गये उसे छोड़े हुए।'

"मैंने यह कहा तो उसकी भवें चढ़ गयीं। 'बच्ची!' विस्मय से बोला—'तुम तो कह रही थी कि कुँआरी हूँ, कालिज में पढ़ती हूँ।'

"मैंने जबाब दिया—'कालिज में पढ़ती हूँ कहा था! कुँआरी कब कहा था ? मेरी बच्ची है डेढ़ बरस की। रो रही होगी। मुझे जाने दो, तुम्हारे पांव छूती हूँ। भगवान तुम्हारा भला करेगा।'

"यह कैसे हो सकता है'—वह बोला—'इतना खर्च करके तुम्हें लाये हैं। पर देखो, बच्ची की बात मालिक से मत कह देना। नहीं तो हमें भी खा जायगा और तुझे भी मार डालेगा। पिये होगा साला! क्या पता चलेगा उसे। बिल्कुल कच्ची, बच्चा-सी तो दीखती हो तुम। तुम्हारी उमर ही क्या है ? खाया-पिया करो। फिर कौन पूछेगा। तुम कहना, मुझे बड़ा डर लगता है। मुझे कभी किसी ने नहीं छुआ। अच्छा बताओ, क्या खाओ-पियोगी ? चाय भिजवा दें कि कुछ और भी शौक करती हो।

"मैंने बहुत हाय-हाय खायी पर उसने कुछ नहीं सुना। मुझे छोड़कर चला गया। मुझे अपनी मूर्खता पर बहुत क्रोध और रोना भी आया। सोचा, चाहे खिड़की से ही कूदकर मर जाऊँ, यहां नहीं रहूँगी। पर उस कमरे में गली में खुलने वाली खिड़की ही नहीं थी। चारों तरफ कमरे थे। सोचा आंचल से ही फांसी लगा लूं पर (गोद में बेसुध लेटी बच्ची को थपथपाकर उसने कहा) इस मरी का मुंह आंखों के सामने आ गया। इसकी आवाज कानों

में आने लगी। 'आई ! आई ! मां, मां !' सोच रही थी ऐ भगवान, यह अच्छा खेल है इन लोगों का।

"बड़ी देर बाद साथ के कमरे का दरवाजा खुला। हिन्दुस्तानियों जैसा महीन कुर्ता-धोती पहने एक आदमी सामने आया। आते ही हिन्दुस्तानी में बोला—'कहो जी, खुश तो हो।' नजदीक आया तो मैं हैरान ! हमारी कम्पनी का मैनेजिंग डायरेक्टर बंतोरिया साहब ! दफ्तर में तो हमेशा सूट पहनकर आता है पर मैंने पहचान लिया, आंखें लाल-लाल ! मरे ने शराब पी होगी।

"मैं एक दम खड़ी हो गयी। मैंने कहा—'सर, यहां मुझे धोखे से ले आये हैं। सर, मैं मर जाऊंगी। सर, मेरी बच्ची बहुत रो रही है। मेरी बच्ची बीमार है।'

"बंतोरिया ने आंखों झपक कर कहा—'बच्ची !' और एकदम लौट पड़ा। दूसरी तरफ जाकर बहुत जोर से बड़ी भद्दी गाली देकर चिल्लाया—'हमारे साथ धोखा करता है। हमें बीमारी लगायेगा। इसी बात का हम हज्जारों रुपया देते हैं ! निकल जाओ सब यहां से !'

"मुझे जो आदमी ले गया था साहब को समझाने लगा—'नहीं सेठ, झूठ बोलती है। बड़ी मक्कार है। हम इस का घर-बार जानते हैं। अभी स्कूल में पढ़ती है। नाचना सीखती है। इस के बच्चा कहां !'

"सेठ और भी गुस्सा हो गया, और भी गाली देकर बोला—'हमें उल्लू बनाता है ! झूठ बोलोगी तो सौ घाट का पानी पिये अपने आपको कुँआरी बतायेगी कि कुँआरी अपने आपको बच्चे वाली बतायेगी ?' सेठ और भी गाली देने लगा।

मुझे ले जाने वाला झूठ बोले जा रहा था। मैंने आगे बढ़कर जोर से पुकारा—'सर, ये झूठ बोलता है। मेरी डेढ़ बरस की बच्ची है। सर, मैं आप के दफ्तर में काम करती हूँ। सर, मैं आप के दफ्तर में टाइपिस्ट हूँ।'

"साहब ने सुना तो सन्न रह गया। कुछ सोचकर मुझ से बोला—'तुम यहां क्यों आयी ? तुम पेशा करती हो ?'

"मेरे तन-बदन में आग गयी। चिल्लाकर मैंने कहा—'ये मुझे धोखा देकर लाया है। मैं पुलिस में रिपोर्ट करूंगी।'

"मालिक ने कहा—'अच्छा तुम बैठो। अभी तुम्हारा इन्तजाम होगा।'

"मैं कांपती हुई सोफे पर बैठ गयी। सोचा, चलो इज्जत तो बची। फिर उधर से झगड़े की आवाज़ आने लगी। पहले तो कुछ समझ नहीं आया, फिर वे लोग जोर से बोलने लगे। साहब गुस्से में गाली देकर कह रहा था—'यह हमें पहचानती है, जाकर हमारी बदनामी करेगी। तुम लोगों को हम इसी बात का खिलाते हैं!'

"एक और आदमी बोला—'मालिक, इतनी-सी बात के लिए घबराते हैं, आप का नमक खाते हैं तो आपके नाम के लिए जान दे देंगे। ये क्या कर लेगी? अभी गर्दन तोड़कर समुद्र में फेंक आता हूँ।'

"मैं कांप उठी। आंखों से आंसू बहने लगे। सच कहती हूँ ताई, अपनी जान का डर नहीं था। बस, ( गोद में पड़ी लड़की पर हाथ रखकर उसने कहा ) इसी का ख्याल आ रहा था।

"थोड़ी देर में एक और आदमी आकर बोला—'चलो बाई चलो, तुम्हें घर पहुँचा दें।'

"बड़े जोर से रोना आया कि मुझे मारने के लिए ले जा रहा है। मन में आया, न जाऊं। जरा ठिठकी भी। फिर सोचा, यहां रहूँगी तो मौत से बुरा। जो भगवान को मंजूर। उठकर चल दी। वह मुझे जीना उतार कर नीचे लाया। एक मोटर नीचे खड़ी थी। ड्राइवर भी था। मोटर के शीशे बन्द थे। आदमी ने फिर पूछा—'कहां है घर तुम्हारा, परभादेवी?'

"मैंने कहा—'तुम मुझे बाहर कहीं छोड़ दो। मैं टैक्सी में चली जाऊंगी।'

"यह आदमी समझाने लगा—'बाई डरो मत, हम ऐसे आदमी नहीं हैं। हमने उस साले को बहुत मारा।'

मैं मोटर में पीछे बैठ गई। वह ड्राइवर के बराबर आगे बैठ गया। मोटर बाजार में आयी तो मैंने कहा—'बस मुझे उतार दो। मैं अपने आप चली

जाऊंगी।' वह कहे जा रहा था—'तुम्हारे घर ही चल रहे हैं; परभादेवी जा रहे हैं।'

"मैं गाड़ी का दरवाजा खोलने लगी, पर खोलना मुझे आता नहीं था। कभी मोटर का दरवाजा खोला नहीं। उस आदमी ने देखा तो बड़े जोर से डांटा—'सीधी चुप बैठ, नहीं तो अभी गर्दन तोड़ देता हूँ!'

"मैंने जोर से शीशा तोड़ने के लिए हाथ मारा। वह आदमी मेरी तरफ को झपटा।.........इतने में बड़े जोर से ठांय हुई। बस, फिर पता नहीं।

"मुझे होश आया तो सफेद-सफेद कपड़े पहने अस्पताल के डाक्टर और नर्स खड़े थे। मैंने मिन्नी को और ताई तुम्हें पुकारा। कुछ देर बाद होश आया तो पता लगा कि मोटर का बड़ा भारी एक्सिडेंट हुआ था। गाड़ी चूर-चूर हो गयी। हस्पताल मुझे पुलिस उठाकर लायी है। पुलिस बाहर खड़ी थी। डाक्टर कह रहा था अभी आधे घंटे इसे रेस्ट करने दो।

"बाहर से बातें सुनाई दे रही थीं,.........ट्रक वाले की गलती थी। दो खून किया।.........नहीं ट्रकवाला बोलता मोटर एकदम घूम गया।'

"मैंने समझा, वह आदमी पीछे की ओर मुझ पर जोर से झपटा, तो ड्राइवर को धक्का लग गया या क्या हुआ कि बड़े जोर से टक्कर हो गयी। कह रहे थे, ट्रक मोटर के ऊपर चढ़ गयी। ड्राइवर और वो दोनों कुचल गये। कह रहे थे, मुझे भी ट्रक के नीचे से निकाला। मैं पीछे थी इसी से बच गई। मेरे सिर में बस जरा सी चोट आयी। मैं सोच रही थी, मुझ से पूछेंगे तो क्या कहूँगी।

"मैंने बार-बार पुकारा—मैं घर जाऊंगी। तब एक पुलिस इंस्पेक्टर आया। बोला—'आप कहां जायंगी?' उसने मोटर का नम्बर लिखा हुआ था। बोला—'आपकी मोटर टूट गयी। आपका पता क्या है?'

"मैंने कहा—'मेरी मोटर नहीं थी। मैं कुछ नहीं जानती। मैं ऐसे ही घर आने के लिये मोटर में बैठ गयी थी। मैं अपने घर जाऊंगी।'

"इंस्पेक्टर हैरान मेरी तरफ देखने लगा। फिर सोच कर बोला—'अच्छा

बताइये, आपका घर कहां है ? आपको पहुँचा दें । मैंने पता बता दिया तो वे लोग मुझे यहां छोड़कर जगह देख गये हैं ।'

अमला बात कहकर फिर आंसू पोंछने लगी । मैंने उसकी पीठ पर हाथ रख कर कहा—"अब क्या घबराती है । भगवान ने तुझे बचा दिया । तू एक कथा भगवान की करा देना ।"

अमला ने फिर आंसू पोंछते हुए कहा—"ताई, पर अब मालिक नौकरी से तो जरूर निकाल देगा । अब क्या करूंगी ?"

मुझे उसकी बात बुरी लगी । मैंने उसका गाल छूकर समझाया—"पागल है ? कैसी बातें करती है । तू भगवान को नमस्कार कर कि तेरी जान बचा दी । उस से बढ़ कर तेरी इज्जत बचा दी । तू नौकरी की फिकर कर रही है ?"

अमला ने फिर आंचल से आंखें पोंछते हुए कहा—"तो ताई, कसर ही क्या रह गयी ?····भगवान को मुझ से यह खेल खेलने की क्या जरूरत थी ?"

९

# करवा का व्रत

कन्हैयालाल अपने दफ्तर के हमजोलियों और मित्रों से दो-तीन बरस बड़ा ही था परन्तु ब्याह उस का उन लोगों के बाद हुआ। उसके बहुत अनुरोध करने पर भी साहब ने उसे ब्याह के लिये सप्ताह भर से अधिक छुट्टी न दी थी। लौटा तो उसके अंतरग मित्रों ने भी उस से वही प्रश्न पूछे जो प्रायः ऐसे अवसर पर दूसरों से पूछे जाते हैं और फिर वही परामर्श उसे दिये गये जो अनुभवी लोग नव-विवाहितों को दिया करते हैं।

हेमराज को कन्हैया समझदार मानता था। हेमराज ने समझाया—बहू को प्यार तो करना ही चाहिये पर प्यार में उसे बिगाड़ देना या सिर चढ़ा लेना भी ठीक नहीं। औरत सरकश हो जाती है, तो आदमी को उम्र भर जोरू का गुलाम ही बना रहना पड़ता है। उसकी जरूरतें पूरी करो, पर रखो अपने काबू में। मार-पीट बुरी बात है पर यह भी नहीं कि औरत को मर्द का डर ही न रहे! डर उसे जरूर रहना चाहिये।....मारे नहीं तो कम से कम गुर्रा तो जरूर दे। तीन बात उसकी मानो तो एक में न भी कर दो। यह न समझ ले कि जो चाहे कर या करा सकती है। उसे तुम्हारी खुशी-नाराजगी की परवाह रहे। हमारे साहब जैसा हाल न हो जाये।........मैं तो देख कर हैरान रह गया। एम्पोरियम से कुछ चीजें लेने के लिये जा रहे थे तो

घरवाली को पुकार कर पैसे लिये। बीबी ने कह दिया—कालीन इस महीने रहने दो। अगले महीने सही, तो भीगी बिल्ली की तरह बोले—'अच्छा!' मर्द को रुपया-पैसा तो अपने हाथ में रखना चाहिये। मालिक तो मर्द है।

कन्हैया के विवाह के समय नक्षत्रों का योग ऐसा था कि सुसराल वाले लड़की की बिदाई कराने के लिये किसी तरह तैयार नहीं हुए। अधिक छुट्टी नहीं थी इसलिये गौने की बात फिर पर ही टल गयी थी। एक तरह से अच्छा ही हुआ। हेमराज ने कन्हैया को सिखा पढ़ा-दिया कि पहली ही रात तुम ऐसा मत करना कि वह समझे कि तुम उसके बिना रह नहीं सकते, या बहुत खुशामद करने लगो।………अपनी मर्जी रखना, समझे! औरत और बिल्ली की जात एक। पहले दिन के व्यवहार का असर उस पर सदा रहता है। तभी तो कहते हैं कि 'गुर्बारा बररोज़े अव्वल कुश्तन'—बिल्ली के आते ही पहले दिन हाथ लगा दे तो फिर रास्ता नहीं पकड़ती।…………तुम कहते हो पढ़ी-लिखी है तो तुम्हें और भी चौकस रहना चाहिये। पढ़ी-लिखी यों भी मिजाज दिखाती है।"

निस्वार्थ भाव से हेमराज की दी हुई सीख कन्हैया ने पल्ले बाँध ली थी। सोचा—मुझे बाजार होटल में खाने पड़े या खुद चौका बर्तन करना पड़े, तो शादी का लाभ क्या? इसलिये वह लाजो को दिल्ली ले आया था। दिल्ली में सब से बड़ी दिक्कत मकान की होती है। रेलवे में काम करने वाले, कन्हैया के जिले के बाबू ने उसे अपने क्वार्टर का एक कमरा और रसोई की जगह सस्ते किराये पर दे दी थी। सो सवा साल से मज़े में चल रहा था।

लाजवंती अलीगढ़ में आठवीं जमात तक पढ़ी थी। बहुत-सी चीजों के शौक थे। कई ऐसी चीज़ों के भी जिन्हें दूसरे घरों की लड़कियों को या नई ब्याही बहुओं को करते देख मन मार कर रह जाना पड़ता था। उसके पिता और बड़े भाई पुराने ख्याल के थे। सोचती थी, ब्याह के बाद सही। उन चीजों के लिये कन्हैया से कहती। लाजो के कहने का ढंग कुछ ऐसा था कि कन्हैया का दिल इन्कार करने को न करता पर इस ख्याल से कि बहू बहुत सरकश न हो जाय दो बातें मान कर तीसरी पर इन्कार भी कर देता। लाजो मुँह फुला लेती। लाजो मुँह फुलाती तो सोचती कि मनायेंगे तो मान जाऊँगी। आखिर तो मनायेंगे ही। पर कन्हैया मनाने की अपेक्षा डाँट ही देता।

एक-आध बार उसने थप्पड़ भी चला दिया। मनौती की प्रतीक्षा में जब थप्पड़ पड़ जाता तो दिल कट कर रह जाता और लाजो अकेले में फूट-फूट कर रोती। फिर उसने सोच लिया—चलो, किस्मत में यही है तो क्या हो सकता है। वह हार मान कर खुद ही बोल पड़ती।

कन्हैया का हाथ पहले दो बार तो क्रोध की बेबसी में ही चला था पर जब चल गया तो उसे अपने अधिकार और शक्ति का संतोष अनुभव होने लगा। अपनी शक्ति अनुभव करने के नशे से बड़ा नशा दूसरा कौन होगा ? इस नशे में राजा देश पर देश समेटते जाते थे, जमींदार गांव पर गांव और सेठ मिल और बैंक खरीदते चले जाते हैं। इस नशे की सीमा नहीं। यह चस्का पड़ा तो कन्हैया के हाथ उतना क्रोध आने की प्रतीक्षा किये बिना भी चल जाते।

मार से लाजो को शारीरिक पीड़ा तो होती ही थी पर उससे अधिक होती अपमान की पीड़ा। ऐसा होने पर वह कई दिन के लिये उदास हो जाती। घर का सब काम करती रहती। बुलाने पर उत्तर भी दे देती। इच्छा न होने पर भी कन्हैया की इच्छा का विरोध न करती पर मन ही मन सोचती रहती, इस से तो अच्छा है मर जाऊँ। और फिर समय पीड़ा को कम कर देता। जीवन था तो हँसने और खुश होने की इच्छा भी फूट ही पड़ती और लाजो फिर हँसने लगती। सोच यह लिया था—मेरा पति है, जैसा भी है मेरे लिये तो यही सब कुछ है। जैसे चाहता है, वैसे ही मैं चलूँ। लाजो के सब तरह आधीन हो जाने पर भी कन्हैया की तेज़ी बढ़ती ही जा रही थी। वह जितनी अधिक बेपरवाही और स्वच्छन्दता लाजो के प्रति दिखा सकता अपने मनमें उसे उतना ही अधिक अपनी समझने और प्यार का संतोष पाता।

क्वार के अंत में पड़ोस की स्त्रियाँ करवाचौथ के व्रत की बात करने लगीं। एक दूसरे को बता रही थीं कि उनके मायके से करवे में क्या आया। पहले बरस लाजो का भाई आकर करवा दे गया था। इस बरस भी वह प्रतीक्षा में थी। जिनके मायके शहर से दूर थे, उनके यहां मायके से रुपये आ गये थे। कन्हैया अपनी चिट्ठी-पत्री दफ्तर के ही पते से मँगाता था। दफ्तर से आकर उसने बताया, "तुम्हारे भाई ने करवे के दो रुपये भेजे हैं।"

करवे के रुपये आ जाने से ही लाजो को संतोष हो गया। सोचा, भैया इतनी दूर कैसे आते ? कन्हैया दफ्तर जा रहा था तो उस ने अभिमान से गर्दन कंधे पर टेढ़ी कर और लाड़ के स्वर में याद दिलाया—"हमारे लिये सरघी में क्या-क्या लाओगे ?......" और लाजो ने ऐसे अवसर पर लाई जाने वाली चीज़ें याद दिला दीं। लाजो पड़ोस में कह आयी कि उसने भी सरघी का सामान मँगाया है। करवाचौथ का व्रत भला कौन हिन्दू स्त्री नहीं करती ? जनम-जनम यही पति मिले, इसलिये दूसरे व्रतों की परवाह न करने वाली पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी इस व्रत की उपेक्षा नहीं कर सकतीं।

अवसर की बात, उस दिन कन्हैया लंच की छुट्टी में साथियों के कुछ ऐसे काबू आ गया कि सवा तीन रुपये खर्च हो गये। वह लाजो का बताया सरघी का सामान घर नहीं ला सका। कन्हैया खाली हाथ घर लौटा तो लाजो का मन बुझ गया। उस ने ग़म खाना सीख कर रूठना छोड़ दिया था परन्तु उस सांझ मुंह लटक ही गया। आँसू पोंछ लिये और बिना बोले चौके-बर्तन के काम में लग गयी। रात भोजन के समय कन्हैया ने देखा कि लाजो मुंह सुजाये है, बोल नहीं रही है, तो अपनी भूल कबूल कर उसे मनाने या कोई और प्रबंध करने का आश्वासन देने के बजाय उसे डांट दिया।

लाजो का मन और भी बिंध गया। कुछ ऐसा खयाल आने लगा—इन्हीं के लिये तो व्रत कर रही हूँ और यह ही ऐसी रुखाई दिखा रहे हैं।.... मैं व्रत कर रही हूँ कि अगले जनम में भी 'इन' से ही ब्याह हो और इन्हें मैं सुखा ही नहीं रही हूँ........। अपनी उपेक्षा और निरादर से भी रोना आ गया। कुछ खाते न बना। ऐसे ही सो गयी।

तड़के पड़ोस से रोज़ की अपेक्षा जल्दी ही बर्तन-भांडे खटकने की आवाज आने लगी। लाजो को याद आने लगा—शान्ती बता रही थी कि उसके बाबू सरघी के लिये फेनियाँ लाये हैं, तार वाले बाबू की घरवाली ने बताया था कि खोये की मिठाई लाये हैं। लाजो ने सोचा, उनके मर्दों को खयाल है न कि हमारी बहू हमारे लिये व्रत कर रही है; इन्हें जरा भी खयाल नहीं।

लाजो का मन इतना खिन्न हो गया कि सरघी में उसने कुछ भी न खाया। न खाने पर भी पति के नाम का व्रत कैसे न रखती। सुबह-सुबह पड़ोस की स्त्रियों के साथ उसने भी करवे का व्रत न करने वाली रानी और

करवे का व्रत करने वाली राजा की प्रेयसी दासी की कथा सुनने का, और व्रत के दूसरे उपचार निबाहे । खाना बनाकर कन्हैयालाल को दफ्तर जाने के समय खिला दिया । कन्हैया ने दफ्तर जाते समय देखा कि लाजो मुँह सुजाये है । उसने फिर डांटा—"मालूम होता है दो-चार खाये बिना तुम सीधी नहीं होगी !"

लाजो को और भी रुलाई आ गयी । कन्हैया दफ्तर चला गया तो वह अकेली बैठी कुछ देर रोती रही । सोचती रही—क्या जुल्म है ? इन्हीं के लिये व्रत कर रही हूँ और इन्हें ही गुस्सा आ रहा है ।........जनम-जनम ये ही मिलें इसीलिये मैं भूखी मर रही हूँ ।.........बड़ा सुख मिल रहा है न ?... अगले जनम में और बड़ा सुख दे देंगे ?....ये ही जनम निबाहना मुश्किल हो रहा है ।....इस जनम में तो इस मुसीबत से मर जाना अच्छा लगता है, दूसरे जनम के लिये वही मुसीबत पक्की कर रही हूँ........ ।

लाजो पिछली रात से भूखी थी । बल्कि पिछली दोपहर से पहले का ही खाया हुआ था । भूख के मारे आंतें कुड़मुड़ा रही थीं और उस पर पति का निर्दय व्यवहार । जनम-जनम, कितने जनम तक उसे ऐसा ही व्यवहार सहना पड़ेगा, सोच कर लाजो का मन डूबने लगा । सिर में दर्द होने लगी तो वह धोती के आंचल से सिर बांध कर खाट पर लेटने लगी तो झिझक गई, करवे के दिन बान पर नहीं लेटा या बैठा जाता । वह दीवार के साथ फर्श पर ही लेट रही ।

लाजो को पड़ोसियों की पुकार सुनाई दी । वे उसे बुलाने आयी थीं । करवाचौथ का व्रत होने के कारण सभी स्त्रियां उपवास करके भी प्रसन्न थीं । आज करवे के कारण नित्य की तरह दोपहर के समय सीने, पिरोने, काढ़ने बुनने का काम किया नहीं जा सकता था; करवे के दिन सुई, सिलाई और चरखा छुआ नहीं जाता । काम से छुट्टी थी और विनोद के लिये ताश या जुए की बैठक जमाने का उपक्रम हो रहा था । वे लाजो को भी उसी के लिये बुलाने आई थीं । सिर दर्द और मन के दुख के कारण लाजो जा नहीं सकी । सिर दर्द और बदन टूटने की बात कह कर वह टाल गयी और फिर सोचने लगी—यह सब तो सुबह सरघी खाये हुए हैं । जान तो मेरी ही निकल रही है ।.........फिर अपने दुखी जीवन के कारण मर जाने का खयाल

आया और कल्पना करने लगी कि करवाचौथ के व्रत के दिन उपवास किये-किये मर जाये, तो इस पुण्य से जरूर ही यही पति अगले जन्म में मिले····

लाजो की कल्पना बावली हो उठी। वह सोचने लगी—मैं मर जाऊँ तो इनका क्या है, और ब्याह कर लेंगे। जो आयेगी, वह भी करवा चौथ का व्रत करेगी। अगले जनम में दोनों का इन्हीं से ब्याह होगा, हम सौतें बनेंगी। सौत का खयाल उसे और भी बुरा लगा। फिर अपने आप समाधान हो गया—नहीं पहले मुझसे ब्याह होगा, मैं मर जाऊँगी तो दूसरी से होगा। अपने उपवास के इतने भयंकर परिणाम की चिंता से मन अधीर हो उठा। भूख अलग व्याकुल किये थी। उसने सोचा—क्यों मैं अपना अगला जनम भी बरबाद करूँ। भूख के कारण शरीर निढाल होने पर भी खाने को मन नहीं हो रहा था, परन्तु उपवास के परिणाम की कल्पना से मन क्रोध से जल उठा। वह उठ खड़ी हुई।

कन्हैयालाल के लिये उसने सुबह जो खाना बनाया था उसमें से बची दो रोटियां कटोरदान में पड़ी थीं। लाजो उठी और उपवास के फल से बचने के लिये उसने मन को वश कर एक रोटी रूखी ही खा ली और एक गिलास पानी पीकर फिर लेट गयी। मन बहुत खिन्न था। कभी सोचती—यह मैंने क्या किया?····व्रत तोड़ दिया। कभी सोचती—ठीक ही तो किया, अपना अगला जनम क्यों बरबाद करूँ? ऐसे पड़े-पड़े झपकी आ गयी।

कमरे के किवाड़ पर धम-धम सुनकर लाजो ने देखा रोशनदान से प्रकाश की जगह अंधकार भीतर आ रहा था। समझ गयी, दफ्तर से लौटे हैं। उसने किवाड़ खोले और चुपचाप एक ओर हट गयी।

कन्हैयालाल ने क्रोध से उसकी ओर देखा—"अभी तक पारा नहीं उतरा? मालूम होता है झाड़े बिना नहीं उतरेगा!"

लाजो के दुखे हुए दिल पर और चोट पड़ी और पीड़ा क्रोध में बदल गयी। कुछ उत्तर न दे वह घूमकर फिर दिवार के सहारे फर्श पर बैठ गई।

कन्हैयालाल का गुस्सा भी उबल पड़ा—"यह अकड़ है?····आज तुझे ठीक कर ही दूं"—उसने कहा और लाजो को बांह से पकड़, खींचकर

गिराते हुए दो थप्पड़ पूरे हाथ के जोर से ताबड़-तोड़ जड़ दिये और हांफते हुए लात उठा कर कहा—"और मिजाज दिखा !....खड़ी हो सीधी ।"

लाजो का क्रोध भी सहन की सीमा पार कर चुका था । खींची जाने पर भी फर्श से उठी नहीं । और मार खाने के लिये तैयार हो उसने चिल्लाकर कहा—मार ले, मार ले ! जान से मार डाल ! पीछा छूटे ! आज ही तो मारेगा ! मैंने कौन व्रत रखा है तेरे लिये जो जनम-जनम तेरी मार खाऊंगी । मार, मार डाल....!"

कन्हैयालाल का लात मारने के लिये उठा पांव अधर में ही रुक गया । लाजो का हाथ उसके हाथ से छूट गया । वह स्तब्ध रह गया । मुंह में आयी गाली भी मुंह में ही रह गयी । ऐसे जान पड़ा कि अंधेरे में कुत्ते के धोखे जिस जानवर को मार बैठा था उसकी गुर्राहट से जाना कि वह शेर था; या लाजो को डांट और मार सकने का अधिकार एक भ्रम ही था । कुछ क्षण वह हांफता हुआ खड़ा सोचता रहा और फिर खाट पर बैठकर चिंता में डूब गया । लाजो फर्श पर पड़ी रो रही थी । उस ओर देखने का साहस कन्हैयालाल को न हो रहा था । वह उठा और बाहर चला गया ।

लाजो फर्श पर पड़ी फूल-फूल कर रोती रही । जब घंटे भर रो चुकी तो उठी । चूल्हा जलाकर कम से कम कन्हैया के लिये खाना तो बनाना ही था । बड़े बेमने उसने खाना बनाया । बना चुकी तब भी कन्हैयालाल लौटा नहीं था । लाजो ने खाना ढक दिया और कमरे के किवाड़ उड़क कर फिर फर्श पर लेट गयी । यही सोच रही थी, क्या मुसीबत है यह जिन्दगी ! यही झेलना था, तो पैदा ही क्यों हुई थी ।....मैंने किया क्या था जो मारने लगे ?

किवाड़ों के खुलने का शब्द सुनाई दिया । वह उठने के लिये आंसुओं से भीगे चेहरे को आंचल से पोंछने लगी । कन्हैयालाल ने आते ही एक नजर उसकी ओर डाली । उसे पुकारे बिना ही वह दीवार के साथ बिछी चटाई पर चुप चाप बैठ गया ।

कन्हैयालाल का ऐसे चुप बैठ जाना नयी ही बात थी पर लाजो गुस्से में कुछ न बोल रसोई में चली गयी । आसन डाल थाली-कटोरी रख खाना परोस दिया और लोटे में पानी लेकर हाथ धुलाने के लिये खड़ी थी । जब पांच

मिनिट हो गये और कन्हैयालाल नहीं आया तो उसे पुकारना ही पड़ा—
"खाना परस दिया है !"

कन्हैयालाल आया तो हाथ नल से धोकर झाड़ते हुए भीतर आया। अब तक हाथ धुलाने के लिये लाजो ही उठकर पानी देती थी। कन्हैयालाल दो ही रोटी खाकर उठ गया। लाजो और देने लगी तो उसने कह दिया—"बस हो गया, और नहीं चाहिये।" कन्हैयालाल खाकर उठा तो रोज की तरह हाथ धुलाने के लिये न कह कर नल की ओर चला गया।

लाजो मन मार कर स्वयं खाने बैठी तो देखा, कद्दू की तरकारी बिलकुल कड़वी हो रही थी। मन की अवस्था ठीक न होने से हल्दी-नमक दो बार पड़ गया था। बड़ी लज्जा अनुभव हुई—"हाय, इन्होंने कुछ कहा भी नहीं। यह तो जरा कम-ज्यादा हो जाने पर डांट देते थे।"

लाजो से दुख में खाया नहीं गया। यों ही कुल्ला कर, हाथ धोकर इधर आयी कि बिस्तर ठीक कर दे, चौका फिर समेट लेगी। देखा तो, कन्हैयालाल स्वयं ही बिस्तर को झाड़ कर बिछा रहा था। लाजो जिस दिन से इस घर में आयी थी ऐसा कभी नहीं हुआ था।

लाजो ने शर्मा कर कहा—"मैं आ गयी रहने दो। किये देती हूँ।" और पति के हाथ से दरी-चादर पकड़ ली। लाजो बिस्तर करने लगी तो कन्हैयालाल दूसरी ओर से मदद करता रहा। फिर लाजो को सम्बोधन किया—"तुमने कुछ खाया नहीं। कद्दू में नमक ज्यादा हो गया है। सुबह और पिछली रात भी तुमने कुछ नहीं खाया था। ठहरो, मैं तुम्हारे लिये दूध ले आऊं।"

लाजो के प्रति इतनी चिन्ता कन्हैयालाल ने कभी नहीं दिखाई थी। जरूरत भी नहीं समझी थी। लाजो को उसने अपनी 'चीज़' समझा था। आज वह ऐसे बात कर रहा था जैसे लाजो भी इंसान हो; उसका भी खयाल किया जाना चाहिये। लाजो को शरम तो आ रही थी पर अच्छा भी लग रहा था। उसी रात से कन्हैयालाल के व्यवहार में एक नरमी सी आ गयी। कड़े बोल की तो बात क्या बल्कि, एक झिझक-सी हर बात में, जैसे लाजो के किसी बात के बुरा मान जाने की या नाराज़ हो जाने की आशंका हो। कोई काम अधूरा देखता तो स्वयं करने लगता। लाजो को मलेरिया बुखार आ गया तो उसने

उसे चौके के समीप नहीं जाने दिया। बर्तन भी खुद ही साफ़ कर लिये। कई दिन तो लाजो को बड़ी उलझन और शरम मालूम हुई पर फिर पति पर और अधिक प्यार आने लगा। जहां तक बन पड़ता, घर का काम उसे नहीं करने देती, प्यार से डांट देती—"यह काम करते मर्द अच्छे नहीं लगते....।"

उन लोगों का जीवन कुछ दूसरी ही तरह का हो गया। लाजो खाने के लिये पुकारती तो कन्हैया जिद्द करता—"तुम सब बना लो फिर एक साथ बैठ कर खायेंगे।" कन्हैया पहले कोई पत्रिका या पुस्तक उधार लाता था तो अकेला मन ही मन पढ़ा करता था। अब लाजो को सुनाकर पढ़ता या खुद सुन लेता। यह भी पूछ लेता—"तुम्हें नींद तो नहीं आ रही ?"

साल बीतते मालूम न हुआ। फिर करवाचौथ का व्रत आ गया। जाने क्यों लाजो के भाई का मनीआर्डर करवे के लिये न पहुँचा था। करवाचौथ से पहले दिन कन्हैयालाल दफ्तर जा रहा था। लाजो ने खिन्नता और लज्जा से कहा—"भैया करवा भेजना शायद भूल गये।"

कन्हैयालाल ने सान्त्वना के स्वर में कहा—"तो क्या हुआ ? उन्होंने जरूर भेजा होगा। डाकखाने वालों का हाल आजकल बुरा है। शायद आज आ जाये या और दो दिन बाद आये। डाकखाने वाले आजकल मनीआर्डर में पन्द्रह-पन्द्रह दिन लगा देते हैं। तुम व्रत उपवास के झगड़े में मत पड़ना। तबीयत खराब हो जाती है। यों कुछ मंगाना ही है तो बता दो, लेते आयेंगे पर व्रत उपवास से होता क्या है ? सब ढकोसले हैं।

"वाह, यह कैसे हो सकता है। हम तो जरूर रखेंगे व्रत। भैया ने करवा नहीं भेजा न सही। बात तो व्रत की है करवे की थोड़े ही।"—लाजो ने बेपरवाही से कहा।

संध्या समय कन्हैयालाल आया तो रुमाल में बंधी छोटी गांठ लाजो को थमाकर बोला—"लो फेनी तो मैं ले आया हूँ पर तुम व्रत-व्रत के झगड़े में नहीं पड़ना। लाजो ने मुस्कराकर रुमाल ले कर आलमारी में रख दिया।

अगले दिन लाजो ने समय पर खाना तैयार कर कन्हैया को रसोई में पुकारा—"आओ, खाना परस दिया है।"

कन्हैया ने जाकर देखा, खाना एक ही आदमी के लिये परोसा था—"और तुम ?"—उसने लाजो की ओर देखा।

"वाह, मेरा तो व्रत है। सुबह सरघी भी खाली। तुम अभी सो ही रहे थे।" लाजो ने मुस्कराकर प्यार से बताया।

"यह बात....? तो हमारा भी व्रत रहा।"—आसन से उठते हुए कन्हैया-लाल ने कहा।

लाजो ने पति का हाथ पकड़ कर रोकते हुए समझाया—"क्या पागल हो, कहीं मर्द भी करवाचौथ का व्रत रखते हैं ?....तुमने सरघी कहां खाई ?"

"नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है।" कन्हैया नहीं माना—"तुम्हें अगले जन्म में मेरी जरूरत है तो क्या मुझे तुम्हारी नहीं है ? या तुम भी व्रत न रखो आज ?"

लाजो पति की ओर कातर आंखों से देखती हार मान गयी। पति के उपासे दफ्तर जाने पर उसका हृदय गर्व से फूला नहीं समा रहा था।

१०

## नकली माल

विक्रम की प्रबल इच्छा थी कि पहले मुकद्दमे की फीस चाहे न ही मिले, पर मुकद्दमा ऐसा हो कि अखबारों में धूम मच जाये। वकील की ख्याति ही तो उसकी पूंजी और साख हैं। लोग उसे पहचानें और भरोसा करें कि वह योग्य है। नई अपरिचित जगह में वकालत जमा सकने का दूसरा ढंग हो भी क्या सकता था? रावलपिंडी में वकालत आरम्भ करना और बात होती। वहां विक्रम के परिवार का अपना बड़ा कारोबार, प्रभाव और परिचय था। उसके अनेक सम्बन्धियों का जिले में लेन-देन का काम चलता था, जमीनें थीं। अदालती मामले बने ही रहते थे।

विक्रम ने लाहौर से वकालत पास करके रावलपिंडी के सब से बड़े वकील खान साहब के साथ अदालत में शागिर्दी का एक बरस पूरा किया ही था कि हिन्दोस्तान और पाकिस्तान का बंटवारा हो गया। विक्रम को अपनी अच्छी-खासी स्थावर सम्पत्ति, कारोबार और परिवार का प्रभाव रावलपिंडी में छोड़कर दिल्ली आ जाना पड़ा। परिवार बंट गया। सम्बन्धी भी भारत के भिन्न भागों में बिखर गये। विक्रम पर दिल्ली में जीवन और व्यवसाय का नया क्षेत्र बनाने की मजबूरी आ पड़ी। आयु का एक चौथाई भाग सफल वकील बन सकने की

तैयारी में लगा दिया था। वकालत करने के सिवा विक्रम दूसरा प्रयत्न भी क्या करता ?

विक्रम जैसे मुकद्दमे की प्रतीक्षा में था, उसे मिला तो, परन्तु विकट झगड़ा भी खड़ा हो गया। कितने ही भले लोग आकर मेरे पीछे पड़ गये कि मैं विक्रम से इस मामले में न पड़ने के लिये कहूँ। भरोसा था कि विक्रम मेरी बात नहीं टाल सकता। मैं परेशानी में फंस गया। विक्रम ने अपने व्यवसायिक हित की दुहाई न देकर एक नैतिक समस्या खड़ी कर दी।

मुकद्दमा था, 'वीनस डेन' ('Venus Den' वीनस की गुफ़ा) रेस्तोरां के मालिक पर। कई प्रभावशाली लोगों का प्रभाव और काफ़ी रकम का दबाव कोतवाल साहब पर पड़ने से यह मुकद्दमा 'वीनस डेन' के मालिक पर दायर किया गया था। कोतवाल साहब को बहुत यत्न और अनेक तर्कों से यह समझाया गया था कि ऐसे रेस्तोरां और होटल समाज की नैतिकता के लिये घातक हैं, उन से समाज में अनाचार फैलेगा। समाज की नैतिकता और आचार ही तो उस की आत्मा है।

विक्रम को भी ऐसे बहुत से तर्कों से समझाने की कोशिश को गई कि वह रेस्तोरां के अनाचारी मालिक की वकालत न करे। ऐसे मामले में वकील बनकर वह यश की अपेक्षा अपयश ही कमाएगा। विक्रम ने कर्तव्य पर न्योछावर हो जाने के लिये आतुर शहीद की निर्भीकता से उत्तर दिया—"····अदालत नैतिक समस्या के निर्णय का स्थान नहीं, कानूनी समस्या के निर्णय का स्थान है।····आप लोग 'वीनस डेन' के मालिक के विरुद्ध नैतिक शक्ति का नहीं कानून की शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं। कानून केवल आप लोगों के लिये नहीं, 'वीनस डेन' के मालिक के लिये भी है। व्यक्तियों की राय और सम्मति कानून नहीं है। कानून व्यवस्था की रक्षा के लिये निश्चित किये गये नियम हैं। आप तो शासन और कानून की शक्ति का प्रयोग करें और 'वीनस डेन' का मालिक न कर सके। समाज कभी उत्तेजना या गलतफ़हमी से व्यक्ति के प्रति अन्याय करने पर उतारू हो सकता है। वकील का कर्त्तव्य है कि कानून के आधार पर व्यक्ति के अधिकार की रक्षा करे, समाज के नियमों का उपयोग गलत तरीके से न होने दे। कठिनाई में पड़े किसी भी अभियुक्त की कानूनी सहायता से विमुख होना वकील का कर्त्तव्य से च्युत होना है।"

विक्रम को समझाया—"सिद्धांत रूप से तुम्हारी बात सही है पर 'वीनस डेन' का मामला किसे नहीं मालूम ? तुम शहर भर से बिगाड़ करने पर क्यों तुले हो ?"

वह और भी उत्तेजित हो उठा—"वीनस डेन' का मालिक अपराधी है या नहीं, यह तो अदालत बतायेगी । उत्तेजित भीड़ की राय यह निर्णय नहीं कर सकती, मुझे या आप को चाहे जो मालूम हो । महत्व तो इस बात का है कि अदालत में साबित क्या होता है ?....अदालत में निर्णय से पहले ही 'वीनस डेन' के मालिक को अपराधी या अनाचारी कह देना कानूनन मानहानि का अपराध है ।........यों तो प्रत्येक मुकद्दमे में एक पक्ष अन्यायी, अपराधी या अनाचारी होता है ।....क्या वकील एक ही पक्ष का समर्थन करते हैं ? यदि अदालत वकील की सहायता के बिना स्वयं ही सदा न्याय का निश्चय कर सके तो वकीलों की जरूरत क्या ? और योग्य-अयोग्य वकील की कसौटी क्या ?....'वीनस डेन' के मालिक को कानूनी सहायता से वंचित कर खामुखाह अपराधी बना देना भी तो अन्याय है ?........हमारे समाज में कितने लोग न्याय पा सकते हैं ?....जो अपनी बात प्रमाणित नहीं करा सकता, न्याय नहीं पा सकता ।....आप चाहते हैं कानून की वेदी पर एक और गरीब का बलिदान हो जाये........" ऐसा जान पड़ा कि विक्रम मुझे ही जज मानकर मुकद्दमे के नाटक का अभ्यास करने लगा हो ।

घटना कुछ इस ढंग की थी:—'वीनस डेन' के मालिक भी अपने रिफ्युजी भाई ही हैं । वे भी पेशावर में अपना जमा रोज़गार छोड़ कर आये थे । ऐसा रोज़गार जिसमें उनके यहां तेइस कारिन्दे थे । यों भी कहा जा सकता है कि उन का कारोबार ऐसा था कि तेइस आदमी उनके लिये मेहनत करके कमाते थे, या तेइस आदमी केवल गुज़ारा लेकर अपनी मेहनत का फल उन्हें सौंप देते थे । प्राचीन काल का कोई कवि शायद कह देता कि उन के तेइस सिर और छियालीस हाथ थे । ऐसे कारोबार से निर्वाह करने का अभ्यास था उन्हें । अब ढलती उम्र में दो हाथों से हथौड़ा-फावड़ा चला कर या सिर पर बोझ ढोकर गुज़ारा कर नहीं सकते थे । हमारे रिफ्यूजी भाइयों के सामने यही समस्या है । वे सब व्यापार ही करना चाहते हैं । रिफ्यूजियों के आ जाने से माल की पैदावार नहीं बढ़ी, माल खपा सकने वालों की संख्या भी

नहीं बढ़ी, तो व्यापारियों के लिये जगह कहां से बढ़ जाये ? वे व्यापार ही करेंगे। पहले से व्यापार करने वालों को धकेल कर उनकी जगह लेंगे। पर व्यापार करेंगे।

हां तो 'वीनस डेन' के मालिक कारोबार की चिंता में थे। थोड़ी बहुत पूंजी पास थी। पूंजी से कारोबार न कर उसे ही खाने लगते तो पूंजी कितने दिन चल सकती थी ? कारोबार भी करते तो क्या ? इतनी बड़ी पूंजी भी तो नहीं थी कि बाज़ार से दूसरे व्यवसाइयों को धकेल कर बाहर कर सकते। उन्हें रेस्तोरां का ही व्यवसाय सूझा। खयाल था दूसरों की अपेक्षा कोई नई बात या कुछ अधिक आकर्षण पैदा कर सकने का। यह भी कम साहस की बात नहीं थी। शायद दूसरा कोई रास्ता भी नहीं था। व्यापार के जगत में गाहकों को खींच सकना ही तो सफलता है।

'वीनस डेन' रेस्तारां की कुछ झलकतो उसके नाम (वीनस की गुफ़ा) से ही मिल जाती है। रेस्तोरां के खुलते ही एक दुनिया में उसकी धूम मच गई। वीनस में सदा रात ही रहती थी। दरवाज़ों और खिड़कियों पर गहरे रंग के भारी-भारी पर्दे थे, जिन्हें भेद कर सूर्य के प्रकाश की किरणें भीतर नहीं जा सकती थीं। भीतर बिजली की बत्तियों पर उन्नाबी-लाल रंग के रेशम के शेड पड़े रहते। फर्श पर कालीन, गद्दियां और भीतर के पर्दे भी लाल रंग की अनेक रंगतों के। फर्नीचर पर काले महोगनी की पालिश। रहस्य और गुलाबी नशे का मिला-जुला-सा वातावरण। सब से प्रबल आकर्षण या रेस्तोरां की जान थीं, सर्विस करने वाली चार लड़कियां। रेस्तोरां के मालिक जाने कहां से चुन कर ऐसी सुडौल और शोख लड़कियां ले आये थे ? मानो दर्जियों या जौहरियों की दुकानों के लिये बनाये माडलों में जान पड़ गई हो। एक कोने में पर्दे के पीछे लड़कियों के लिये ड्रेसिंग और मेकअप का भी प्रबंध था। लड़कियां जब चाहतीं, पर्दे के पीछे जाकर कंघी, पाउडर या होठों की सुर्खी और भवों की पेंसिल संवार आतीं।

वीनस के रेट दूसरे रेस्तोरां से अलग थे। साधारण चाय के दाम प्रति व्यक्ति डेढ़ रुपया। खाने या नाश्ते की चीजें संख्या में अधिक नहीं थीं। जो थीं, साधारण ही। मामूली समोसे या दालमोठ की प्लेट का भी कम से कम दाम एक रुपया। पर्दों के पीछे प्राइवेट जगहें थीं। वहां बैठने के दाम कम

से कम पांच रुपये और प्रत्येक घंटे के बाद उसी हिसाब से। 'टिप' के तौर पर गाहक लड़कियों की चोली में रुपया-दो रुपया खोंस देते सो लड़कियों का होता। 'वीनस डेन' में अधिक दाम चाय या नाश्ते के नहीं, भीतर जाकर बैठने के ही थे। 'वीनस डेन' में मिलने वाला संतोष दूसरे रेस्तोरां में कहां था?

ऐरे-ग़ैरों की बहुत बड़ी भीड़ तो मालिक चाहते भी नहीं थे। सावधानी के तौर पर मोटे अक्षरों में दरवाज़े पर ही लिखा था—Right of admission reserved. यानि जिसे चाहें भीतर न आने दें। हां, समझने-बूझने वाले गाहक भरे ही रहते थे। सर्विस करने वाली लड़कियों से हँस-बोल सकने के लिये गाहक काफ़ी देर बैठे रहते। लड़कियों के चाय, शरबत या कोई प्लेट लेकर आने पर गाहक उन का हाथ पकड़ कर बात कर लेते या परदों के पीछे उन्हें मिनिट-दो-मिनिट के लिये बैठा लेते तो आपत्ति नहीं की जातीं थी, परन्तु लड़कियां काम का बहाना कर और मुस्कराकर जल्दी ही उठ जातीं। उन्हें दुबारा बुलाने के लिये गाहकों को और आर्डर देने पड़ते। अधिक पैसा खर्च करने वाले या प्रायः आते रहने वाले गाहकों के हाथों कुछ उच्छृंखलता भी लड़कियां सह जातीं और जब-तब संकोच और आपत्ति भी प्रकट कर देतीं। उनका संकोच और आपत्ति ऐसी ही थी जैसे खीरे पर नमक-मिरच। आपत्ति का ढंग कुण्ठित करने वाले विरोध का नहीं आमंत्रण की मधुरता ही लिये रहता था। उच्छृंखलता की सीमा भी थी। अर्थात गाहकों के हाथ कपड़ों के भीतर नहीं जा सकते थे। इस प्रतिबंध की रक्षा के लिये मालिक की ओर से खूंखार से जान पड़ने वाले दो पठान कारिंदे भी मौजूद रहते थे।

'वीनस डेन' के पचास दिन के संक्षिप्त से जीवन में, वहां बहुत अधिक आने-जाने वाले गाहकों में एक थे महताबराय। महताबराय का निजी और सार्वजनिक जीवन अलग-अलग था। बनस्पति घी की खूब बड़ी एजेंसी थी। राजनैतिक काम में भी काफ़ी समय देते थे। महताबराय का मन रेस्तोरां में सर्विस करने वाली मोहनी पर बहुत बह गया था। प्रत्येक शाम वीनस रेस्तोरां में दो-ढाई घंटे बैठे रहते। मोहनी आर्डर की चीज़ें लाती। हाथ पकड़ कर पास बैठा लिये जाने पर संकोच से जरा मुस्कराती, कुछ क्षण अपने हाथ के स्पर्श का रस देकर, काम की मज़बूरी बता महताबराय के कंधे का सहारा ले

उठ जाती। महताबराय को फिर और आर्डर देना पड़ता। इस चक्कर में महताबराय तीन-साढ़े तीन सौ रुपया गला चुके थे। उन्होंने रेस्तोरां के मालिक से मोहिनी को घर पर बुला सकने के लिये बात की। यह आश्वासन भी दिया था कि इस बात के लिये उचित खर्च करने में उन्हें संकोच नहीं है। मालिक ने तेवर चढ़ा कर उत्तर दिया था—"देखिये, फिर ऐसी बात जुबान पर न लाइयेगा। यह शरीफ़ खानदानी लड़कियां हैं। बेचारी मुसीबत की मारी किसी तरह इज्जत से अपने दिन काट रही हैं।"

मोहनी के शरीफ़ खानदान की और दुर्लभ होने की बात ने महताबराय के मन की आग को और भी भड़का दिया। टके-टके बिकने वाली बाज़ारू लड़कियों की उन्हें परवाह नहीं थी। उन्होंने मालिक की परवाह न कर मोहनी को खुश कर देने का वायदा कर बाहर मिलने के लिये कहा। मोहनी जालिम मालिक का भय और अपनी कातरता दिखा कर कतरा गई। महताबराय की तड़प और भी बढ़ गई।

'वीनस डेन' के मालिक की रुखाई और मोहनी की छलनाओं से तंग आकर महताबराय ने कई दिन मोहनी के रेस्तोरां से निकलने और आने के समय का अनुमान कर प्रतीक्षा की। मोहनी या सर्विस करने वाली किसी भी लड़की को कभी भी रेस्तोरां में आते-जाते नहीं देखा गया। रेस्तोरां में आते-जाते केवल मर्दों या लड़कों को पाया गया था। इन लड़कियों का पीछा करने के लिये उत्सुक लोगों को यह रहस्य समझ नहीं आता था कि रेस्तोरां बन्द होने के समय यह लड़कियां कहां अन्तर्ध्यान हो जाती हैं ?

परेशान होकर एक दिन महताबराय ने निश्चय कर लिया कि मोहनी को रेस्तोरां में ही सबक सिखायेंगे। सहायता के लिये वे अपने ऐसे कामों में दाहिने हाथ नरसिंह को भी साथ ले गये। मोहनी आर्डर की चीज़ें लेकर आई। महताबराय ने उसे हाथ से पकड़ अपने और नरसिंह के बीच बैठा लिया। यह कोई नई बात नहीं थी। मोहनी ने ज़रा संकोच दिखाया और बैठ गई। मिनट भर बैठ कर मोहनी उठने लगी। महताबराय ने उसे कंधे से रोक कर कहा—"बैठो, तुम्हारा नुकसान हम भर देंगे।"—और उसके हाथ चंचल हो उठे। मोहनी ने लजा और सकुचाकर सदा की तरह उसके हाथों को रोक कर आपत्ति की—"हाय, ना !"

उस दिन महताबराय नखरों की सीमा तोड़ देने का निश्चय करके आये थे। उन्होंने मोहनी को और कड़ाई से पकड़ लिया। मोहनी बिगड़ उठी—"छोड़ मुझे!"—उसने डांटा और हाथा-पाई पर आ गई। महताबराय ने मोहनी की बाहों में जितनी शक्ति का अनुमान कर उसे पकड़ा था, उससे कहीं अधिक शक्ति से धक्का पाया।

अपमानित होकर महताबराय का आकर्षण क्रोध में बदल गया। नरसिंह ने मोहनी के हाथ पकड़ लिये और महताबराय ने मोहनी को विवश कर देने के लिये उसकी चोली में हाथ डाल दिया। मोहनी चिल्लाकर लात, घूंसे चलाने लगी। नरसिंह ने गाली दे कर उसे चोटी से खींचा। मोहनी की चोली और चुटिया खिंच जाने पर महताबराय और नरसिंह ही हक्के-बक्के खड़े रह गये। तब तक रेस्तोरां के पठान कारिंदे भी "क्या है, क्या है?" कहते आ गये।

पठान कारिंदे महताबराय और नरसिंह को पकड़ कर मालिक की ओर ले चले। महताबराय और नरसिंह मोहनी की चुटिया और चोली हाथ में लिये, मोहनी को बाहों से खींचते, भयंकर गालियां बकते रेस्तोरां के मालिक के सामने चीख पड़े—"लौडों के छातियां बांध कर दुनिया को ठगते हो....!"

रेस्तोरां में कोहराम मच गया। शेष तीनों लड़कियां जाने कहां गायब हो गईं। रसिक लोग ठगे जाने के विरोध में मालिक पर बरस पड़े। महताबराय ने बहुत सी गालियां देकर कहा—"हमने पांच सौ रुपया गला दिया तुम्हारे यहां। हम अपनी पाई-पाई लेकर जायेंगे; नहीं तो तुम्हारे इस बदमाशी के अड्डे की ईंट से ईंट बजाकर तुम्हारी हड्डी-पसली पीस डालेंगे! इसी धोखे के इतने दाम लगा रखे हैं? नकली छातियों से दुनिया को उल्लू बनाते हो?"

दूरदर्शी मालिक ने ऐसे उत्पात से परास्त न हो जाने का उपाय पहले ही कर रखा था। दोनों पठानों ने पश्तो में गुर्रा कर छुरे निकाल लिये इसलिये रेस्तोरां के मालिक के धोखे और अन्याय के प्रति महताबराय और दूसरे गाहकों का विरोध सफल न हो सका। अपनी धमकियों का कोई प्रभाव न देखकर उन लोगों ने रेस्तोरां के मालिक के विरुद्ध सरकारी शक्ति का प्रयोग करने के लिये कोतवाल की शरण ली।

कोतवाल साहब को ताजीरातहिंद में ऐसी कोई दफ़ा नहीं मिली जिसके

मुताबिक लड़कों को लड़की बना देने के लिये रेस्तोरां के मालिक का चालान किया जा सकता। परन्तु कुछ लोगों के पैसे का और दूसरे लोगों का नैतिक दबाव कोतवाल पर पड़ा। इस अनाचार की धूम अखबारों में भी मच गई। 'वीनस डेन' में धोखा दिया जाने के लिये मालिक का चालान कोतवाल को कर ही देना पड़ा। रेस्तोरां के मालिक को वकील मिला, विक्रम। विक्रम तो ऐसे मामले की प्रतीक्षा में ही था।

विक्रम को जब अनाचार, धोखे और अन्याय के पक्ष में सहायता देने के लिये लज्जित किया गया तो उसका निधड़क उत्तर था:—

"....वीनस डेन में अनाचार क्या था ?....यही शिकायत है न कि गाहकों को रिझाने के लिये रासलीला के लौंडों को नकली छातियां बांधकर लड़कियां बना लिया गया था ?........बाजार में नकली छातियां बेचना तो धोखा नहीं है ? उनका प्रयोग लड़कियां ही कर सकती हैं; लड़के नहीं !........यदि गाहकों को मनोरंजन के लिये सचमुच लड़कियां मिलतीं तो अनाचार न होता ?........ कुछ लड़कियों को होटल में लाकर बिगाड़ना तो अपराध न होता ? कुत्सित रुचि के लोगों को खिलौनों से बहला देना धोखा हो गया !........असली घी की जगह बनस्पति घी बेचना, सन को रेशम बना कर बेचना, जूतों में गत्ता भरना, गेहूँ के आटे में जौ, बेसन में मक्का मिलाना, नकली दवाइयां बेचना, काले चेहरे को गोरा, पीले होठों को लाल बनाना, रामलीला और रासलीला में छोकड़ों को कृष्ण की सखियां और सीता-माता बनाना धोखा नहीं है, सेठों के हित को जन तंत्र कहना भी धोखा नहीं है, बस लड़के को लड़की बनाकर आपका मन बहला देना ही धोखा है........"

विक्रम का यह बकवास सुनकर मन में आया कि अब उससे कभी बात न करूं पर तभी कुछ भले आदमी बीच में बोल पड़े—"भाई क्यों ज्यादती करते हो, यह तो उसका बिज़नेस है।........अपना-अपना बिज़नेस है। किसी का बिज़नेस बिगाड़ना ठीक नहीं....।" चुप ही रह जाना पड़ा।

११

## पाप का कीचड़

१६४२ अप्रैल की बात है। फादर सेविल सुबह नौ बजे की गाड़ी से बिड़िन्नरा स्टेशन पर उतरे थे। वे रोमनकैथोलिक संघ की ओर से बिड़िन्नरा के समीप 'निष्कलंक कुमारी माता मरियम' के पुरातन गिरजे की इमारतों और सम्पत्ति का निरीक्षण करने आये थे। फादर सेविल एक लम्बा सफेद चोगा पहने स्टेशन से निकले। कमर में पद की सूचक रस्सी बंधी थी। चेहरे पर अनुभव की साक्षी, लम्बी खिचड़ी दाढ़ी और माथे पर विचार की रेखाएँ। उनके कंधे से लटकते झोले में बहुत-सी पुस्तकें थीं। दूसरी बगल में कम्बल में लिपटा छोटा-सा बिस्तर था। बिस्तर अन्य पादरियों के साथ सफर में ले जाये जाने वाले बिस्तरों की अपेक्षा बहुत छोटा था परन्तु झोले में पुस्तकों की संख्या अधिक थी। फादर सेविल अन्य पादरियों की तरह केवल धार्मिक पुस्तकें ही नहीं पढ़ते थे, सभी तरह की पुस्तकों में उन्हें रुचि थी। यात्रा में समय काटने के लिए अधिक पुस्तकों की आवश्यकता रहती थी। फादर को यदि अवसर मिल जाता तो पुस्तकों की अपेक्षा यात्रियों का अध्ययन करने और उन्हें समझने से ही अधिक संतोष होता था। वे किसानों से खेती-बाड़ी के सम्बन्ध में, व्यापारियों से व्यवसाय के सम्बन्ध में, साधारण लोगों के गृहस्थ जीवन और उनके बाल-बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में

भी बात कर सकते थे। फादर केवल प्रश्नों का उत्तर ही नहीं देते थे बल्कि स्वयं परिचय कर बात-चीत का प्रसंग भी उठा देते थे।

बिङ्गिरा स्टेशन से बाहर निकल उन्होंने यात्रियों की प्रतीक्षा में खड़े तीन-चार तांगों की ओर दृष्टि डाली। माता मरियम के पर्व की तीर्थ यात्रा का समय नहीं था इसलिए सवारियां कम ही थीं। मौजूद तांगों में से उन्हें रोज़ेरियो का साफ-सुथरा तांगा ही अपने योग्य जँचा। रोज़ेरियो दूसरे तांगे वालों से झगड़े का अवसर न आने देने के लिए अपने तांगे के समीप ही खड़ा था। अपनी जगह खड़े ही झुक कर उसने यात्री फादर के प्रति आदर प्रकट किया।

फादर सेविल रोज़ेरियो के तांगे की ओर बढ़ आये और उन्होंने तांगे वाले से छः मील दूर माता मरियम के गिरजे तक जाने का किराया पूछा। रोज़ेरियो ने बहुत संयत ढंग से उत्तर दिया—"फादर, माता मेरी के गिरजे तक जाने का किराया एक रुपया है।"

तांगे वालों के सदा ही उचित से अधिक किराया मांगने और भाव-तोल करने के अनुभव के कारण फादर सेविल ने मुस्कराकर पूछा, "क्या यही उचित किराया है?"

"पूज्य फादर मैं एक ग़रीब पापी हूँ," रोज़ेरियो ने विनय से उत्तर दिया। "यथाशक्ति पाप से बचने का ध्यान रखता हूँ। मैं झूठ नहीं बोलता।"

फादर सेविल ने खिचड़ी होती हुई दाढ़ी-मूँछ में छिपे ओठों पर आती मुस्कान को और भी छिपा लिया। उन्होंने अनुमान कर लिया कि तांगेवाला भगवान से डरने वाला भक्त ईसाई है। उन्होंने रोज़ेरियो को आशीर्वाद दिया और तांगे पर बैठ गए। रोज़ेरियो साधारण तांगे वालों के अभ्यास के विरुद्ध, घोड़ी को गाली दिए या ललकारे बिना और सवारी से भी कोई बात न कर संयत भाव से तांगा हांके जा रहा था। उसकी नज़रें सामने सड़क पर थीं। फादर सेविल की भारी-भारी भौहों की छाया में छिपी पैनी आँखें, रोज़ेरियो के साधारण स्वस्थ, आदमी के कद परन्तु निस्तेज और भावना रहित चेहरे की ओर लगी हुई थीं। उन्हें विस्मय हो रहा था, यह व्यक्ति कोई भी बात क्यों नहीं कर रहा है।

फादर सेबिल ने स्वयं ही रोज़ेरियो को सम्बोधन किया, "पुत्र, तुम स्वस्थ हो !"

"हाँ धर्म पिता, आपके आशीर्वाद से मेरे शरीर में कोई कष्ट नहीं है," रोज़ेरियो ने उत्तर दिया।

"तुम्हारे मन में कोई कष्ट है !" कुछ सोचकर फादर ने पूछा।

"नहीं धर्म पिता, मेरे मन कोई कष्ट नहीं है क्योंकि मैं व्यर्थ इच्छाएं नहीं करता हूँ।" रोज़ेरियो ने अपना भावशून्य चेहरा और निश्चल आँखें फादर की ओर घुमाकर उत्तर दिया।

फादर सेबिल तांगे वाले के इस गम्भीर उत्तर से मन ही मन मुस्कराये। उसका नाम पूछ कर फिर बोले, "पुत्र रोज़ेरियो, व्यर्थ इच्छा से क्या अभिप्राय है ? क्या तुम्हारे मन में कोई भी कामना नहीं है ? क्या तुम इच्छा शून्य हो ?"

रोज़ेरियो ने फादर की ओर घूमकर फिर उत्तर दिया, "धर्मपिता, मैं और मेरी ग़रीब पत्नी नित्य धर्म पुस्तक का पाठ करते हैं। अधर्म की ओर ले जाने वाली इच्छाओं का हम लोग दमन किये रहते हैं। हम दोनों की केवल एक इच्छा है। 'निष्कलंक कुमारी माता मरियम' की कृपा से, पापियों के लिए अपना जीवन देने वाले भगवान के पुत्र, हम दोनों को शीघ्र अपने चरणों में स्थान दें और दोनों निष्पाप रहते हुए उनके सम्मुख उपस्थित हो सकें।" रोज़ेरियो नज़र फिर सड़क पर जमाये तांगा हांकता रहा।

फादर सेबिल के मन में रोज़ेरियो के प्रति गहरी सहानुभूति अनुभव हुई, जैसी कि सहृदय व्यक्ति को, किसी रोगी को देख कर होती है। उन्होंने फिर रोज़ेरियो को सम्बोधन किया, "पुत्र, क्या तुम और तुम्हारी पवित्र-हृदया पत्नी सदा मृत्यु की ही प्रतीक्षा करते रहते हैं ?"

फादर के इस प्रश्न से भी रोज़ेरियो के ओठों पर कोई मुस्कान या परिवर्तन चेहरे पर न आया। "हाँ धर्मपिता !" रोज़ेरियो ने भावशून्य स्वर में उत्तर दिया, "आप ठीक कहते हैं। यह संसार पापमय है। पाप के परिणाम में जन्म लेने वाले मनुष्य से सदा ही पाप हो जाने की आशंका रहती है इसलिये मैं और मेरी ग़रीब पत्नी यही चाहते हैं कि भगवान के पुत्र प्रभू मसीह

हमें शीघ्र, निष्पाप रहते ही अपने चरणों में शरण दें और हम प्रलय के बाद उनके सामने निर्दोष एवं निष्पाप उपस्थित होकर उनके राज्य में निवास कर सकें। धर्मपिता, हमारी केवल यही कामना है।"

फादर सेबिल का मन रोज़ेरियो के प्रति करुणा से भीज गया। उन्होंने पुनः प्रश्न किया, "पुत्र, भगवान ने आशीर्वाद रूप तुम्हें कितनी सन्तानें दी हैं?"

रोज़ेरियो ने निरपराध व्यक्ति के गर्व से उत्तर दिया, "धर्मपिता, मैं और मेरी ग़रीब पत्नी आदिम पाप से बचने के लिये संयम का जीवन व्यतीत करते हैं, धर्म पुस्तक का पाठ हमें सहायता देता है। हमारे कोई सन्तान नहीं है। मैं और मेरी पत्नी दोनों निर्दोष हैं।"

रोज़ेरियो के निष्पाप जीवन और मृत्यु की कामना की घोषणा से फादर सेबिल की सांस आधे में रुक गई। भारी-भारी भौहें, रोज़ेरियो की ओर लगी उनकी पैनी आंखों पर और भी झुक आयीं। कुछ देर वह सोचते ही रहे.... इस व्यक्ति के संयम की यातना से जकड़े जीवन का लाभ क्या ?....वह अपने विश्वास से संतोष की प्रवृत्ति का दमन कर जीवन को दुखमय बनाये है और दुख भोगने का कर्तव्य पूरा कर संतोष पाता है। धर्म-विश्वास उसके जीवन को पूर्णता नहीं दे रहा बल्कि उसके जीवन के रस को इस विश्वास ने स्पंज की तरह चूस लिया है।

कुछ देर बाद फादर सेबिल ने रोज़ेरियो को फिर पुकारा, "पुत्र, इस पृथ्वी पर तुम्हारे जीवन का प्रयोजन क्या है?"

रोज़ेरियो ने फादर सेबिल की ओर घूमकर ऐसे देखा जैसे पाठ याद करके आने वाला विद्यार्थी अध्यापक की ओर निर्भय देखता है और उत्तर दिया—"धर्म पिता, इस पृथ्वी पर हमारे जीवन का प्रयोजन निष्पाप रहकर स्वर्ग में भगवान के पुत्र के राज्य में स्थान पाना है।"

फादर सेबिल ने जेब से रूमाल निकाल मुख के सामने रखकर खंगारा और फिर रोज़ेरियो को सम्बोधन किया, "रोज़ेरियो, धर्म पिता से संकोच उचित नहीं। तुम मुझे नहीं अपने धार्मिक-विश्वास के सामने उत्तर दो। सच कहो, क्या तुम्हारा पारिवारिक जीवन सुखी है?........क्या पत्नी तुमसे कलह करती है?"

"नहीं धर्म पिता, मेरी पत्नी कभी कलह नहीं करती। वह बहुत धर्म-भीरु है।"

"कभी कलह नहीं करती?............कितने वर्ष से पत्नी से तुम्हारी कलह नहीं हुई?"

"धर्म पिता, पत्नी से मेरी कभी कलह नहीं हुई," रोज़ेरियो ने विश्वास दिलाया। "बारह वर्ष में एक बार भी नहीं।"

"तुम्हारा विवाह हुए कितने वर्ष हुए?" विस्मय से फादर सेविल ने पूछा।

"बारह वर्ष धर्म पिता।"

"बारह वर्ष में एक बार भी कलह नहीं हुई?" फादर विस्मय में बड़बड़ाये।

फादर सेविल सहारे के लिए अपनी लम्बी, चितकबरी दाढ़ी को दायें हाथ से थामे, सिर झुकाये सोचने लगे। फादर के चेहरे का भाव अविश्वास अथवा विस्मय का नहीं गहरी करुणा का था। वे कुछ देर सोचते ही रहे। इस बार रोज़ेरियो ने ही प्रश्न किया।

"धर्म पिता, मेरा विश्वास है मेरा जीवन निष्पाप है और भगवान मुझसे प्रसन्न हैं।"

"नहीं पुत्र," फ़ादर सेविल ने गम्भीर चेहरा उठाकर करुण स्वर में उत्तर दिया। "मुझे दुख है पुत्र, भगवान तुमसे प्रसन्न नहीं है।"

रोज़ेरियो निष्प्रभ नेत्रों से फादर की ओर देखता रह गया। उसका चेहरा भावों के परिवर्तन से इतना शून्य था कि निराशा भी उस पर प्रकट न हुई। वह केवल फादर की ओर देखता ही रहा।

"नहीं पुत्र, भगवान तुमसे प्रसन्न नहीं है," फादर सेविल ने दृढ़ता से अपनी बात दोहराई। "पुत्र, भगवान की कृपा चाहते हो तो तुम्हें धर्मपिता का आदेश मानना पड़ेगा।"

रोज़ेरियो की आंखों में आँखें गड़ा फादर ने पूछा, "मेरा आदेश मानोगे?"

"धर्मपिता, कोई भी धर्मभीरु व्यक्ति धर्मपिता के आदेश की अवहेलना नहीं कर सकता," रोज़ेरियो ने विश्वास दिलाया। "मैं धर्मपिता का आदेश अवश्य मानूंगा।"

फादर सेबिल ने चेतावनी के लिए तर्जनी अंगुली उठाकर समझाया, "तुमने भगवान को प्रसन्न करने के लिए पैंतीस वर्ष की आयु तक धर्म का पालन किया है। आज तुम्हें अपने विश्वास और ज्ञान का उपयोग न कर मेरे आदेश का ही पालन करना होगा।........ऐसा करोगे?"

रोज़ेरियो ने विश्वास दिलाया कि वह फादर के आदेश का पालन करेगा।

फादर ने प्रश्न किया, "पुत्र, तुमने कभी शराब पी है, कभी सिगरेट पी है?"

रोज़ेरियो ने धर्मपिता को उत्तर दिया कि उसने कभी सिगरेट नहीं पिया। गिरजाघर में उपासना के समय, मनुष्यों की रक्षा के लिए बहाये भगवान मसीह के रक्त के प्रतीक स्वरूप, पवित्र मदिरा के आचमन के अतिरिक्त उसने कभी शराब नहीं पी।

फादर सेबिल ने एक बार फिर मुंह के सामने रूमाल रख कर खंगारा और रोज़ेरियो से बोले—"रोज़ेरियो, तुम्हारे इस नगर में शराब बिकती है?"

"हां धर्मपिता," रोज़ेरियो ने उत्तर दिया। "शराब के ठेकेदार की दूकान है, जहां पापी लोग जाकर शराब पीते हैं।"

फादर ने रोज़ेरियो को आदेश दिया, "आज तुम संध्या घर लौटते समय शराब के ठेके से एक छटांक शराब पीकर जाना। घर जाकर तुम घर के खाना पकाने के बर्तनों में से कोई नितांत आवश्यक चीज लेकर ऐसी जगह फेंक देना कि तुम्हारी पत्नी को खोजने पर भी न मिल सके। घर लौटकर तुम एक सिगरेट अवश्य पीना। खोये हुए बर्तन के सम्बन्ध में पत्नी चाहे जितना पूछे, दो घंटे से पहिले उसे बर्तन का पता न देना। दो घंटे के बाद जो सूझे अथवा जैसा मनचाहे कर सकते हो। पुत्र, आज मेरे आदेश का अक्षरशः पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है।"

१९१४ में जब पहला महायुद्ध आरम्भ हुआ, फादर बाइटा को अपने देश लौट जाना पड़ा। जाते समय वे अपने स्वामी-भक्त सेवक लायल को अपना टांगा और घोड़ी, भविष्य में सम्मानपूर्वक निर्वाह करने के लिये दे गये। लायल बिड्निरा स्टेशन पर उतरने वाले मुसाफिरों को कस्बे और समीप के गांव तक पहुँचा कर निर्वाह करने लगा।

जब रोज़ेरियो के पिता को प्रभु मसीह ने विश्राम के लिए प्रलय के दिन ही जागने वाले शयनागार में शरण दे दी तो रोज़ेरियो उत्तराधिकार में पाये व्यवसाय से निर्वाह करने लगा। रोज़ेरियो ने बचपन से धार्मिक शिक्षा पायी थी। २२-२३ वर्ष की अवस्था में पिता ने उसका विवाह फादर बाइटा के पुराने बावर्ची माइकेल की एक-मात्र पुत्री मार्था से कर दिया था। रोज़ेरियो और मार्था ने बचपन से ही सद्-धर्म की शिक्षा पायी थी। विवाह के बाद दोनों एक साथ 'निष्कलंक कुमारी माता मरियम' की कृपा से; दृढ़ विश्वास से भगवान के एक-मात्र पुत्र द्वारा निर्दिष्ट, त्याग और वासना से मुक्त जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होंने विवाह का प्रयोजन धर्म पालन में पति-पत्नी की परस्पर सहायता ही समझा था। उन्होंने आदिमपाप (आरिजिनल सिन) के कीचड़ में न फंसने की प्रतिज्ञा की थी और उसका पालन कर रहे थे।

भगवान की सृष्टि को पथ-भ्रष्ट करके दुख में फंसाने के लिए ही शैतान ने आदम और हौआ के मन में आदिम-पाप की प्रवृत्ति पैदा की थी। उस आदिम पाप से निवृत्ति न पा सकने के कारण ही सृष्टि के समस्त दुःखों की परम्परा चली आ रही है। उस पाप के परिणाम से ही मनुष्य स्वर्ग से बहिष्कृत होकर पृथ्वी पर रहता है और दुःख भोगने के लिए संसार में आता है। मनुष्य-जाति का कल्याण करने वाले, सद्धर्म के प्रतिनिधि पिता पादरी, मनुष्य की सन्तान को प्रभु मसीह के चरणों की शरण में लेते समय, उन्हें आदिम-पाप पवित्र करने के लिए ही बपतिस्मे के पवित्र जल से स्नान कराकर पाप-मुक्त करते हैं, परन्तु नर-नारी शैतान द्वारा मनुष्य-जाति के रक्त में भर दिये आदिम-पाप के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाते। वे दुःख भोगने के लिए, आदिम-पाप द्वारा दूसरे मनुष्यों को जन्म देते जाते हैं। धर्म-प्राण, सरल राज़ेरियो दम्पति आदिम-पाप से मुक्त रहने की प्रतिज्ञा को निबाह रहे थे।

रोज़ेरियो दम्पति प्रातःकाल उठकर कुछ देर इन्जील का पाठ करते। उस के बाद रोज़ेरियो घोड़ी को खरहरा और मालिश करता। मार्था इतने में दिन का भोजन तैयार कर लेती। दोनों भगवान से उस दिन के लिए खाना मिलने की प्रार्थना और भोजन पाने के लिए उन्हें धन्यवाद दे कर भोजन कर लेते। रोज़ेरियो तांगे में घोड़ी जोत कर स्टेशन की ओर चला जाता। मार्था अपनी झोंपड़ी की सफ़ाई कर उसे सम्भालती और फिर घर के चारों ओर लगी तरकारी के खेत में काम करती रहती। चौथे पहर वह ताज़ी तरकारी टोकरी में लेकर कस्बे के बाज़ार में चली जाती।

मार्था तरकारी बेचकर बाजार से सूर्यास्त के बाद ही लौट पाती। उसी समय रोज़ेरियो भी दिन भर का श्रम पूरा करके लौटता। रोज़ेरियो तांगा खोल कर घोड़ी के शरीर पर हाथ फेर दस-पन्द्रह मिनिट टहला कर उसे थान पर बांध कर घास डाल देता और तांगा धो डालता। मार्था रात का खाना बनाने में लग जाती। रोज़ेरियो पन्द्रह-बीस मिनट खाट पर पीठ सीधी कर लेता। तब तक खाना तैयार हो जाता।

पति-पत्नी फिर भगवान से दिन का भोजन मिलने की प्रार्थना और भोजन पाने के लिए उन्हें धन्यवाद देकर शांति व सन्तोष से भोजन कर लेते।

घर में एक लालटेन थी। पति-पत्नी अपनी-अपनी इन्जील ले, लालटेन के समीप बैठकर, घन्टे-डेढ़ घन्टे तक पाठ करते और फिर अपनी-अपनी खाट पर सो जाते। सुबह उठते तो एक दूसरे से सामना होने पर एक दूसरे के कल्याण के लिए भगवान से दुआ मांगते। बारह वर्ष से रोज़ेरियो दम्पति का धर्मनिष्ठ, एक रस जीवन इसी प्रकार चला आ रहा था। ऋतुओं में निश्चित समय पर परिवर्तन होता, आकाश और पृथ्वी पर भी कई परिवर्तन होते रहते। आकाश घने मेघों से भर कर गर्जन कर उठता। पृथ्वी कभी जल से अघाकर बनस्पति से भर जाती, कभी सूर्य के ताप से झुलसे हुए पृथ्वी के वक्षस्थल पर गरम हवाएँ हू-हू कर चलने लगतीं। कभी समीप के नाले में बाढ़ आ जाती और कभी वह नाला कंकाल के शरीर की तरह सूख कर काले-धौले पत्थरों से भर जाता, परन्तु रोज़ेरियो दम्पति के जीवन में कोई परिवर्तन न होता।

× × ×

संध्या समय घर लौटने से पहिले रोज़ेरियो का धर्म-भीरु मन शराब पीने की आशंका से संकुचित हो रहा था, परन्तु वह धर्म-पिता के आदेश की अवहेलना भी न कर सकता था। जैसे-तैसे एक छटांक शराब उसने गले से नीचे उतार ली। शराब की दुर्गन्ध और कड़वेपन से उसका मन ऊब रहा था। मुख से उस स्वाद को दूर करने के लिए दो पैसे का दाल-मोठ खाना पड़ा। घर पहुँचते-पहुँचते उसका सिर कंधों से उठा जा रहा था। जैसे-तैसे घोड़ी को तांगे से खोला और कुछ मिनिट टहलाया। तांगा धोने की इच्छा न हुई। मार्था अभी तरकारी बेचकर बाज़ार से लौटी नहीं थी। वह जाकर लेट रहा। तभी याद आया उसे कोई आवश्यक बर्तन फेंकना या छिपा देना है। वह लड़खड़ाता हुआ उठा। रसोई के कोने में सब बर्तन धुले हुए और साफ़ सजाकर रखे हुए थे। रोज़ेरियो ने बर्तनों में से करछुल उठा ली। छिपाने के लिए कोई ऐसी जगह न दिखाई दी कि मार्था को खोजने पर भी करछुल न मिलती। रोज़ेरियो ने झोपड़ी से बाहर आकर करछुल तरकारी की क्यारी में मिट्टी के नीचे दबा दी और खाट पर जा लेटा।

खाट पर लेट कर रोज़ेरियो को याद आया कि उसे सिगरेट भी पीना है। उसका सिर धीमे-धीमे चकरा रहा था। माचिस लेने के लिए फिर उठना पड़ा। सिगरेट सुलगाकर माचिस और सिगरेट का पैकट खाट के नीचे ही छोड़ वह धुँआ उड़ाने लगा। तम्बाकू पीने का अभ्यास न होने के कारण जान पड़ रहा था कि उसके मुख से निकलते धुएं के साथ-साथ उसका मस्तिष्क भी आकाश की ओर उड़ता चला जा रहा है। वह सिगरेट समाप्त न कर सका। सिगरेट उसकी उंगलियों में थमे-थमे बुझ गई। बुझी सिगरेट भी उस ने खाट के नीचे डाल दी और नशे में लाल-लाल आंखें झोपड़ी की धन्नियों पर लगाये लेटा रहा।

मार्था तरकारी बेच कर लौटी। झोपड़ी के समीप छप्पर के नीचे खड़े तांगे की ओर उसकी दृष्टि गई। तांगा धोया नहीं गया था, यह देखकर मार्था को विस्मय हुआ। झोंपड़ी के भीतर जाकर पति को खाट पर लेटा देख मार्था का विस्मय आशंका में बदल गया। समीप जा उसने स्नेह से पूछा—"क्यों प्यारे, क्या जी अच्छा नहीं ?''''''क्या धूप लग गयी ?"

रोज़ेरियो ने कुछ उत्तर न देकर करवट बदल ली। मार्था ने झुक कर

पति का माथा छुआ। ज्वर की ऊष्णता न पाकर उसे सन्तोष हुआ। "अच्छा तुम लेटो, विश्राम से जी अच्छा हो जायगा। तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए मरियम माता से दुआ मांग लूँ, फिर खाना बनाऊंगी।"

दीवार में बने एक बड़े आले में 'निष्कलंक कुमारी माता मरियम' की छोटी सी प्रतिमा रखी थी। मार्था ने मोमबत्ती का एक टुकड़ा जला कर प्रतिमा के सामने रखा और घुटने टेक कर पति के स्वास्थ्य के लिए दुआ माँगी और चूल्हे की ओर रसोई में चली गई।

मार्था दाल का अदहन चढ़ाकर चावल बीनने लगी। दाल में उबाल आजाने पर हल्दी-नमक डालने के लिए करछुल रखने की जगह पर हाथ बढ़ाया। करछुल गायब थी। सभी सम्भव जगहों पर करछुल खोजकर विवश हो मार्था ने पति से पूछा —"प्यारे, करछुल नहीं मिल रही है।"

"नहीं मिल रही है तो मैं क्या करूँ," रोज़ेरियो ने दीवार की ओर मुख किये ही क्रोध में उत्तर दे दिया।

"हाय, आज तुम कैसे बोल रहे हो ?," पति के व्यवहार से आहत हो मार्था बोली।

रोज़ेरियो नशे के प्रभाव से मन में उठते उबाल को सम्भाल न पाया। बोला, "कौन गाली दे दी है मैंने ?"

"ऐसे तो तुम कभी नहीं बोलते थे प्यारे।"मार्था ने खाट की ओर बढ़ कर कहा। उसका पांव खाट के नीचे पड़ी माचिस पर पड़ा। झुककर देखा— आधी बुझी सिगरेट भी थी। मार्था के विस्मय का अन्त न था। विस्मय में पुकार उठी,—"हाय, क्या तुमने सिगरेट पी है ?"

मार्था के स्वर की वेदना से चोट पाकर और अपने अपराध को छिपाने की विवशता में रोज़ेरियो ने कड़े स्वर में उत्तर दिया, "तुम्हें इससे मतलब ?"

पति के इस निरादरपूर्ण उत्तर से मार्था को और भी चोट लगी। क्षण भर सोचकर उसने अनाचार का विरोध करने के लिए अपने आप को एकाग्र किया। इस एकाग्रता में उसे रोज़ेरियो के श्वास में दुर्गन्ध-सी अनुभव हुई। पूछे बिना न रह सकी, "यह कैसी दुर्गन्ध तुम्हारे सांस में आ रही है ?"

अनाचार के विरोध में मार्था का चेहरा गम्भीर हो गया। कुछ क्रुद्ध स्वर में उसने कहा—"तुम्हारी आँखें भी लाल हैं। क्या तुम ने शराब पी है?"

मार्था के इन प्रश्नों का रोज़ेरियो के पास क्या उत्तर था। फादर मेविल के आदेश के अनुसार वह दो घन्टे से पहिले मार्था को कुछ बता नहीं सकता था। धर्म संकट और आत्म-ग्लानि के द्वन्द्व में विक्षिप्त होकर वह भड़क उठा, "तुझे क्या?···जा हट परे यहाँ से?"

बारह वर्ष के विवाहित जीवन में मार्था को इस से बड़ी चोट न लगी थी। खड़े रहना और बात करना सम्भव न रहा। वह पति की खाट से दूर हट कर आले में रखी 'निष्कलंक कुमारी माता मरियम' की प्रतिमा के सामने धरती पर जा गिरी और फूट-फूट कर रोने लगी।

रोज़ेरियो के हृदय और मस्तिष्क से आत्म-ग्लानि, क्रोध, करुणा और धर्मपिता के आदेश के प्रति कर्तव्य के द्वन्द्व का बवंडर उठ रहा था। वह विवश था। दोनों बाहों में सिर को जकड़, दांत भींच कर वह औंधा लेटा रहा कि दो घन्टे से पहिले वह मुंह नहीं खोलेगा।

मार्था के सिसक-सिसक कर रोने का शब्द उसके कानों में आ रहा था। चूल्हे पर रखी दाल के उफन-उफन कर चूल्हे में गिरने से, आग बुझने और दाल का उफान कोयलों पर जलने की गंध भी अनुभव हो रही थी, परन्तु वह विवश था। दो घन्टे से पहिले वह कुछ नही कर सकता था।

रात का अंधेरा गहरा हो चुका था। घर में लालटेन न जलाई जा सकी थी। चूल्हे में भी आग बुझ गयी थी। झोपड़ी के भीतर अंधेरे में रोज़ेरियो की लम्बी-लम्बी सांसों का और मार्था की हिचकियों का क्रम जारी था।

रोज़ेरियो को विश्वास हो गया कि दो घन्टे का समय बीत चुका है। अभी शराब के नशे की उत्तेजना मस्तिष्क और शरीर में बाकी थी। उस अवस्था में पत्नी के साथ किये दुर्व्यवहार का परिताप भी उतनी ही तीव्रता से अनुभव हो रहा था। वह खाट से उठा। धरती पर पड़ी मार्था के समीप जा, पिघले से स्वर में उसने पुकारा, "सुनो प्यारी, मुआफ़ कर दो। मैं क्षमा मांग रहा हूँ।"

बरसात समाप्त हो जाने पर बरसाती पहाड़ी नदी में क्षीण हो जाने वाले

जल के वेग की तरह मार्था की रुलाई भी क्षीण हो चली थी। रोज़ेरियो की बात ऐसे ही हुई जैसे ऊपर पहाड़ पर फिर ज़ोर से वर्षा हो गयी हो। मार्था की रुलाई में फिर एकदम बढ़िया-सी आ गयी। वह और ज़ोर से रो पड़ी।

मार्था की रुलाई के प्रवाह में रोज़ेरियो का मन भी बह गया। उसने आर्द्र स्वर में पुकारा, "प्यारी, सुनो तो!...." मार्था और भी ज़ोर से रो पड़ी।

विवाहित जीवन के बारह वर्षों में, आदिम-पाप के प्रति आशंका के कारण रोज़ेरियो और मार्था ने एक दूसरे के शरीर का स्पर्श कभी ही किया होगा। कम से कम हृदय की आर्द्रता और भावुकता से तो कभी नहीं। आपस में एक-दूसरे के प्रति क्रोध और तनाव की ऐसी परिस्थिति की विवशता में रोज़ेरियो ने मार्था के कन्धे पर हाथ रखकर अनुनय किया, "प्यारी सुन तो, तुम्हें नहीं मालूम, मेरा दोष नहीं है!"

पति के हाथ के स्पर्श से मार्था और भी सिमिट गयी। उसकी रुलाई का वेग और भी बढ़ गया। मार्था को मना सकने के लिए रोज़ेरियो ने उस पर झुक, उस के कान के समीप मुंह ले जाकर विनय की, "मेरी बात सुनो...." अपनी बात सुना सकने के लिए, अपना अपराध क्षमा करा सकने के लिए रोज़ेरियो को, अपनी पत्नी को गोद में खींच लेने के अधिकार का प्रयोग करना पड़ा। आदिम पाप की आशंका में बारह वर्ष तक वह इस अधिकार को त्यागे रहा था।

ज्यों-ज्यों रोज़ेरियो मार्था को अपनी गोद में खींच रहा था मार्था सिमटी जा रही थी। नहीं मालूम, मार्था को पति के स्पर्श से भय अनुभव हो रहा था या और अधिक आग्रह और अधिक बलपूर्वक समेटे जाने के संतोष की इच्छा थी? उसे रोज़ेरियो की अधीरता से सुख मिल रहा था।

रोज़ेरियो को अपने अपराध के सम्मुख पूर्णतया परास्त हो जाना पड़ा। अपना अपराध मार्जन कराने के लिए वह बारह वर्ष का तप न्योछावर कर देने के लिए विवश हो गया। उसने अपनी पराजय स्वीकार करने के लिए मार्था को गोद में समेट लिया और उसकी रुलाई स्वयं ले लेने के लिए मार्था के ओंठों पर अपने ओंठ रख दिये।

उस रात झोंपड़ी में लालटेन न जली। चूल्हा भी न जला। रोज़ेरियो और मार्था ने लालटेन के समीप बैठकर उस रात धर्म-पुस्तक का पाठ भी न किया।

विलम्ब से सोने के कारण मार्था की आंख देर से ही खुली। रोज़ेरियो का सिर उस की बांह पर था। गहरी नींद में उसका श्वास समगति से चल रहा था। मार्था उसकी मुंदी हुई पलकों की ओर देखती रही। ओठों पर मुस्कान आ गयी। बांये हाथ से वह रोज़ेरियो के केश सहलाने लगी। विलम्ब अधिक हो गया था। रोज़ेरियो को उठा देना आवश्यक था। "प्यारे" कहने के लिए उसके ओंठ खुले परन्तु रोज़ेरियो के ओठों पर झुक गये।

रोज़ेरियो की पलकें खुल गयीं और मार्था का सांवला चेहरा ताम्बे की तरह लाल हो गया। दोनों खाट से उठ जाना चाहते थे परन्तु एक दूसरे को उठने न दे रहे थे।

× × ×

रोज़ेरियो और मार्था का पिछले बारह वर्ष से चला आया जीवन का क्रम बदल गया। दिन भर के काम के बाद घर लौटते समय रोज़ेरियो की इच्छा होती कि मार्था के लिए कुछ लेता जाय। इस प्रेरणा से रोज़ेरियो को पहले की अपेक्षा कुछ अधिक समय तक भाग-दौड़ करनी पड़ती। सवारियों की खोज भी वह अधिक उत्साह से करता। टांगे को रोगन कराकर आकर्षक बनाये रखने का ध्यान रखता। अपनी घोड़ी को प्रसन्न और उत्साहित रखने के लिए उस से बात कर थपथपाता रहता। रातिब के अतिरिक्त जब-तब गुड़ की डली या मिठाई भी घोड़ी के मुंह में दे देता। अब घोड़ी भी उसे देख हिनाहिना देती। चेहरे पर कभी क्रोध और कभी मुस्कान भी दिखाई देती। टांगे वाले और कस्बे के लोग आते-जाते उसे टोककर बात करने लगते। घर से चलते समय रोज़ेरिया पड़ोस के बच्चों को टांगे पर कस्बे तक सैर करा देता। लगभग दस महीने बीते होंगे, रोज़ेरियो की झोंपड़ी से बच्चे के रोने-ठुनकने की सुरीली आवाज भी आने लगी।

× × ×

१६४७ जून में एक दिन फिर फादर सेबिल बिड़िन्नरा स्टेशन पर उतरे। उन्हें याद आया कि पांच वर्ष पहले वे माता मरियम के गिरजे तक, जीवन से उदास एक टांगे वाले की सवारी पर गये थे। टांगे वाले का नाम याद न था, परन्तु इतना खूब याद था कि वह तांगे वाला पापमय संसार को छोड़कर शीघ्र ही प्रभु मसीह के चरणों में शरण पाने के लिए उत्सुक था। उस व्यक्ति पर पाप का आतंक छाया देख उन्हें दुःख हुआ था। वे उसे एक विचित्र उपदेश दे गये थे।

फादर स्टेशन से बाहर निकल सवारियों की ओर देख रहे थे। एक व्यक्ति ने आकर उन्हें आदर से प्रणाम किया और उनकी बगल में थमा बिस्तरा स्वयं लेकर बोला—"धर्मपिता आइए, गिरजे तक जाने के लिए आप का तांगा हाजिर है !"

फादर सेबिल ने ध्यान से देखकर पहचाना और बोले, "पांच वर्ष पूर्व हम तुम्हारे ही तांगे पर गिरजाघर गये थे ?"

"ठीक कह रहे हैं धर्मपिता। यह सेवक ही आपको माता मरियम के गिरजाघर तक ले गया था।"

फादर सेबिल ने अभ्यास के अनुसार भाड़ा पूछा। रोज़ेरियो ने मुस्करा कर उत्तर दिया, "धर्मपिता, आप बस्ती के लोगों के कल्याण के लिए पधारे हैं। आप क्रिश्चियन लोगों के बच्चों को बपतिस्मा देकर उन्हें प्रभु मसीह की शरण में स्थान देंगे। मेरे भी दो बच्चे आपकी शरण हैं। आप से क्या किराया लूं।

फादर के ओंठ मुस्कराहट में घूम गये और भारी भौहों के नीचे की आंखों में प्रसन्नता चमक उठी।

रोज़ेरियो फादर सेबिल को तांगे पर बिठाये गिरजाघर की ओर लिये जा रहा था। पांच ही मिनट में रोज़ेरियो ने फादर को कस्बे, बच्चों के स्कूल और गिरजाघर के सम्बन्ध में बहुत सी बातें बता दीं। बीच-बीच में, अपनी घोड़ी को पुचकारता जा रहा था और बरसात के मौसम में स्कूल के सामने कीचड़ भर जाने से बच्चों के कष्ट की शिकायत कर रहा था।

घोड़ी की चाल बढ़ाने के लिए रोज़ेरियो ने उसे थापी देकर टिटकारा और फिर दूसरी बात करने के लिए फादर की ओर घूमकर देखा। इस बार

फादर सेबिल अपनी खिचड़ी, लम्बी दाढ़ी को उँगलियों से कंघी करते हुए टोक बैठे, "पुत्र, यह तो बताओ कि इस पापमय संसार को छोड़कर शीघ्र ही भगवान के पुत्र की शरण में चले जाने के सम्बन्ध में अब तुम्हारा क्या विचार है ?"

रोज़ेरियो लज्जा से कुछ झेंप गया। घोड़ी की पीठ पर नज़र लगाये दबे स्वर में उसने उत्तर दिया, "धर्मपिता, क्षमा चाहता हूँ, अभी तो भगवान के दिये गोद के एक लड़का और लड़की हैं। उन्हें पाल-पोसकर बड़ा करने की जिम्मेदारी सिर पर है। कस्बे के साहू निम्बालकर का भी कुछ ऋण देना है....।"

फादर सेबिल के दाढ़ी-मूंछों से घिरे ओठों पर हंसी फूट आई। विनोद से झुक आयीं पलकों के बीच से रोज़ेरियो को देखते हुए उन्होंने पूछा, "पुत्र, अब तो तुम सुखी हो, सन्तुष्ट हो ?"

रोज़ेरियो ने लज्जा से सिर झुका लिया, "हाँ धर्मपिता, परन्तु अब हम सांसारिक पापों में लथपथ हो गये हैं। अब हम लोग धर्म-पुस्तक का पाठ भी नियम से नहीं कर पाते। बच्चों की चिन्ता और आपसी बातों में उलझकर प्रार्थना करना भी भूल जाते हैं। धर्मपिता, अब तो भगवान की दया का ही भरोसा है। हम पाप के कीचड़ में लथ-पथ हो गये हैं।...."

पश्चाताप की गहरी सांस लेकर रोज़ेरियो ने अपना अपराध स्वीकार किया, "धर्मपिता, आपने मेरे धर्म की परीक्षा ली थी। मैं उत्तीर्ण न हुआ। नशे में संयम न रख सकने से मैं पत्नी से लड़ पड़ा और धर्मपिता फिर कुछ भी अपने हाथ में न रहा....।"

फादर सेबिल का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। उन्होंने आश्वासन दिया, "पुत्र, प्रसन्नता की ही बात है। अब तुम भगवान की दया के पात्र हो गये हो। जैसे तुम्हें धूल और कीचड़ से लथ-पथ अपने बच्चों को हृदय से लगा लेने में संतोष होता है, वैसे ही भगवान भी अपनी पापी सृष्टि को हृदय से लगाकर पाप-मुक्त करने में संतोष पाते हैं। उस सांझ की लड़ाई ने तुम्हारे हृदय पर से दम्भ का ढकना उतारकर तुम्हें पृथ्वी का मनुष्य बना दिया....। अब तुम पुण्य का अहंकार छोड़कर संसार के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर रहे हो।"